मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 148 • वर्ष 156 अंक 1-2 • अप्रैल-मई (संयुक्तांक) 2026 • दस रुपये • 20 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 की विरासत को याद करो! 3

नोएडा, मानेसर के मज़दूर संघर्षों में कौन "बाहरी" और कौन "भीतरी" 18

विदेशों में हर दिन 20 से अधिक भारतीय मज़दूरों की मौत 4

नोएडा और मानेसर में गिरफ्तार मज़दूरों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों व छात्रों को रिहा करो! सभी अन्यायपूर्ण मुक़दमे वापस लो!

नोएडा में हुई हिंसा में उत्तर प्रदेश पुलिस की कथित भूमिका की उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच करो!

देश के अलग-अलग हिस्सों में पिछले कुछ महीनों के दौरान मज़दूर वेतन बढ़ोत्तरी, डबल रेट से ओवरटाइम भुगतान, छह दिनों के कार्य सप्ताह और अन्य श्रम अधिकारों के लिए सड़कों पर उतरे हैं, विरोध-प्रदर्शन किये हैं और हड़तालें आयोजित की हैं। इस श्रृंखला की शुरुआत 2 फ़रवरी को बरौनी में रिफ़ाइनरी में मज़दूरों की हड़ताल के साथ हुई थी। इसके बाद, पानीपत में भी रिफ़ाइनरी में 23 फ़रवरी को हज़ारों मज़दूरों ने हड़ताल की। फिर सूरत में आर्सेलर मित्तल निपन कम्पनी में, भरूच में पेट्रो-केमिकल प्लाण्ट में, सालेम में आईओसीएल प्लाण्ट में, और वडोदरा में मज़दूरों ने हड़तालें कीं। इनके अलावा भी कई छोटी हड़तालें अलग-अलग जगहों पर हुईं। 2 अप्रैल को हड़तालों की लहर मानेसर, गुड़गाँव पहुँची जहाँ कई गारमेण्ट व ऑटोमोबाइल कारखानों में मज़दूरों ने वाजिब माँगों को उठाते हुए हड़तालें आयोजित कीं। और फिर अन्ततः 8 अप्रैल को नोएडा के विभिन्न प्लाण्टों के मज़दूर इंसानों जैसे जीवन की माँगों को लेकर हड़ताल पर उतर गये। हर जगह मज़दूरों को पुलिसिया दमन का सामना करना पड़ा और उन्होंने बहादुरी से इसका प्रतिरोध किया। इन सभी राज्यों में राज्य सरकारों ने खुलेआम कम्पनियों, मालिकान और प्रबन्धन के हितों की नुमाइन्दगी की। लेकिन मज़दूरों ने भी हर जगह दमन का डटकर मुक़ाबला किया और अपने जायज़ हक़ों के लिए संघर्ष को जारी रखा।

नतीजतन, हरियाणा में नायब सिंह

सम्पादकीय अग्रलेख

सैनी की भाजपा सरकार को न्यूनतम वेतन में 35 प्रतिशत बढ़ोत्तरी का ऐलान करना पड़ा। उत्तर प्रदेश में, जहाँ 2012 से न्यूनतम वेतन नहीं बढ़ाया गया था (हालाँकि नियमतः सरकार को हर तीन वर्ष पर बढ़ती महँगाई के अनुसार न्यूनतम मज़दूरी में बढ़ोत्तरी करनी होती है), योगी आदित्यनाथ की सरकार ने वेतन में 21 प्रतिशत की मामूली बढ़ोत्तरी की। इन बढ़ोत्तरियों के बाद भी मज़दूर अपने परिवार का गुज़ारा भुखमरी और कुपोषण की रेखा पर खड़े होकर ही कर सकते हैं और साथ ही 12 घण्टे की कमरतोड़ मेहनत उनके लिए एक मजबूरी होगी और आठ घण्टे के कार्यदिवस का उनके लिए कोई अर्थ नहीं होगा।

हरियाणा में न्यूनतम मज़दूरी अकुशल मज़दूर के लिए रु. 11,274 से बढ़ाकर रु. 15,220, अर्द्धकुशल मज़दूर के लिए रु. 12,430 से रु. 16,780, कुशल मज़दूर के लिए रु. 13,704 से रु. 18,500 और अतिकुशल मज़दूर के लिए रु. 14,389 से रु. 19,425 तक बढ़ा दी गयी। लेकिन यह मज़दूरों की माँग से कहीं कम था जो कम-से-कम रु. 25,000 न्यूनतम वेतन की माँग उठा रहे थे। वास्तव में, देखा जाय तो रु. 25,000 में भी आज के समय में एक मज़दूर अपने परिवार का गुज़ारा कैसे करेगा यह सोचने की बात है। उत्तर प्रदेश में तो बढ़ोत्तरी मज़दूरों के साथ एक और भी बुरा और भद्दा मज़ाक था। यहाँ अकुशल मज़दूर के लिए न्यूनतम मज़दूरी को रु. 11,313 से बढ़ाकर रु. 13,690, अर्द्धकुशल मज़दूर के लिए रु. 12,445 से रु. 15,059 और कुशल मज़दूर के लिए रु. 13,940 से रु. 16,868 कर दी गयी। यह बढ़ोत्तरी विशेष तौर पर नोएडा और ग़ाज़ियाबाद के लिए थी। उत्तर प्रदेश के बाक़ी ज़िलों में तो यह बढ़ोत्तरी और भी कम रही। दरअसल, अगर आज के उपभोक्ता कीमत सूचकांक को देखें तो रु. 30,000 प्रति माह से कम पर कोई मज़दूर ढंग से अपने परिवार का गुज़ारा नहीं चला सकता। लेकिन 12 घण्टे की कमरतोड़ मेहनत के बाद भी इतनी कम न्यूनतम मज़दूरी में मज़दूर महीने का रु. 30,000 नहीं कमा पाते।

न्यूनतम मज़दूरी में इस मज़ाकिया

(पेज 12 पर जारी)

गोदी मीडिया ने कैसी घृणित चालें चलीं?

गोदी मीडिया ने नोएडा और मानेसर के मज़दूर आन्दोलन को ग़ैर-क़ानूनी बनाकर पेश करने के लिए कैसी घृणित चालें चलीं?

• **अरविन्द**

(तेज़ और हॉरर फिल्म सरीख़ी डरावनी आवाज़ में और डरावने पार्श्व संगीत के साथ गोदी मीडिया के एक न्यूज़ चैनल का बाज़ारू एंकर): **"नोएडा मज़दूर हड़ताल का "मास्टरमाइण्ड" आदित्य आनन्द नोएडा में मज़दूर आन्दोलन कर रहा था! वह देश में अलग-अलग जगह मज़दूरों को संगठित करता है। वह मज़दूरों को हड़ताल में नेतृत्व देता है!"**

(एक अन्य गोदी मीडिया एंकर उतनी ही सनसनीख़ेज़ डरावनी आवाज़ में और उतने ही थर्ड क्लास पार्श्व संगीत के साथ चिल्लाते हुए): "मास्टरमाइण्ड रूपेश देश में घूम-घूमकर मज़दूरों को उनके अधिकार बता रहा था! वह नोएडा में मज़दूरों को बिजली कनेक्शन के अधिकार के लिए लड़ने को बोल रहा था! वह मज़दूरों को यूनियन बनाने के लिए उकसा रहा था!"

(एक और बाज़ारू गोदी मीडिया चैनल का एंकर उतनी ही घिनौनी सनसनीख़ेज़ चीख़ और भयाक्रान्त करने वाले संगीत के साथ): *"हिमांशु ठाकुर छात्रों के बीच मज़दूरों की हड़ताल का समर्थन करने का आह्वान कर रहा था। वह नोएडा में मज़दूरों के समर्थन के लिए भी गया था! वह जनता को उनके अधिकारों के बारे में बताता है!"*

ये सिर्फ़ चन्द उदाहरण हैं। 11 अप्रैल से लेकर क़रीब 27-28 अप्रैल तक गोदी मीडिया के समस्त चैनल इसी प्रकार की बाज़ारू व भड़काऊ बातों से भरे हुए थे। उपरोक्त बातों को ऐसे पेश किया जा रहा था मानो वे कोई असंवैधानिक और ग़ैर-क़ानूनी हरक़तें हों। लेकिन उपरोक्त बातों पर ज़रा ग़ौर करें: **क्या मज़दूर आन्दोलन करना ग़ैर-क़ानूनी और आपराधिक हरक़त है? क्या मज़दूरों को उनके**

(पेज 11 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

मेहजबीं की कविता

वे मुंतज़िर हैं

हमारी बिरादरी का कोई जेल में बंद है
उसने मज़दूरों के साथ स्वर में स्वर मिला
लिया था
अख़बार के लिए एक फीचर लिखकर भेजा था
कुछ कविताएं भेजीं थी पत्रिका में

आधी रात को पुलिस उठा ले गयी है
उसका लेपटॉप फोन डायरी भी अपने कब्जे
में कर लिया है
फेसबुक पर कल से यह ख़बर लटकी हुई है
इसी ख़बर के ऊपर नीचे लटके हुए हैं
काव्य गोष्ठी के इस्तिहार
किताबों के लोकार्पण के निमंत्रण
फलाना ढिमकाना सम्मान के समाचार

हस्बे मामूल मैंने सभी को लाइक कर दिया है
कहीं शुभकामनाएं कहीं दुखद समाचार
लिख दिया है
जेल वाला समाचार स्मृति से धीरे-धीरे
इरेज हो गया है
काव्य गोष्ठी का इस्तहार अपनी ओर खींच रहा है
मैं अहसास ए कमतरी में मुब्तिला हो रही हूं

आज एक हफ्ता हो गया है फलाना ढिमकाना
को जेल में बंद हुए
इस बीच मैंने दस कविताएं लिख डाली हैं
एक पत्रिका में इस महीने मेरी कविताएं
आने वाली हैं
दो जगह से कविता पाठ का निमंत्रण भी
मिला है
मैंने जेल वाली पोस्ट को शेयर किया है
अपने प्रकाशित होने वाली पोस्ट को सब
जगह शेयर किया है
अपने निमंत्रण समाचार को स्टेटस पर
लगा दिया है

आटे में नमक के बराबर प्रगतिशील
जमात के लोग कवियों लेखकों को जेल
से बाहर निकालने के लिए संघर्ष कर रहे हैं
बाक़ी के शेष काव्य गोष्ठी सेमिनार
आयोजित कर रहे हैं
निमंत्रण भेज रहे हैं निमंत्रण स्वीकार
कर रहे हैं

मंच पर चढ़ कर प्रगतिशील कवि
कह रहा है
बहुत भयावह स्थिति है इस दौर में कविता
नहीं लिखी जाएंगी तो कब लिखी जाएंगी
कविता पाठ चल रहा है वे पहना रहे हैं
एक-दूसरे को शॉल
वे दे रहे हैं एक-दूसरे को गुलदस्ते
बीच-बीच में ठहाकों और चाए समोसे
का वक़्फ़ा चल रहा है

इस मेहफिल से दूर जेलखाने में एक
मख़लूक़ खा रही है सूखी रोटी मन
मार कर
वे मुंतज़िर हैं नई सुबह की ज़ियारत के
वे मुंतज़िर हैं समतामूलक समाज के
वे उनसे उम्मीद लगा कर बैठे हैं जो जेल से
बाहर ज़मीनी स्तर पर एक-दूसरे के हाथों
में मशाल थामे हुए हैं !!

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट

www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर नि:शुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिए भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :

www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से एक अपील

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो इसे जारी रखने में हमारा सहयोग करें।

1. 'मज़दूर बिगुल' की वार्षिक, पंचवर्षीय या आजीवन सदस्यता ख़ुद लें और अपने साथियों को दिलवायें।
2. अगर आपकी सदस्यता का समय बीत रहा है या बीत चुका है, तो उसका नवीनीकरण करायें।
3. अख़बार के वितरक बनें, इसे ज़्यादा से ज़्यादा मेहनतकश पाठकों तक पहुँचाने में हमारे साथ जुड़ें। (प्रिण्ट ऑर्डर बढ़ने से लागत भी कुछ कम होती है।)
4. अख़बार के लिए नियमित आर्थिक सहयोग भेजें।

हमें जनता की ताक़त पर भरोसा है और हमारे अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि बिना कोई समझौता किये, एक विचार के ज़रिए जुड़े लोगों की साझा मेहनत और सहयोग के दम पर बड़े काम किये जा सकते हैं। इसी ताक़त के सहारे 'बिगुल' 1996 से लगातार निकल रहा है और यह यात्रा आगे भी जारी रहेगी। हमें विश्वास है कि इस यात्रा में आप हमारे हमसफ़र बने रहेंगे।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया इसकी सदस्यता लें और अपने दोस्तों को भी दिलवाएँ। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं। या फिर QR कोड स्कैन करके मोबाइल से भुगतान कर सकते हैं।

QR कोड व UPI

मनीऑर्डर के लिए पता :

मज़दूर बिगुल,
द्वारा जनचेतना,
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787,
IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

UPI: bigulakhbar@okicici

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :

फ़ोन : 0522-4108495, 8853476339 (व्हॉट्सऐप)
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

अपने कारख़ाने, वर्कशॉप, दफ़्तर या बस्ती की समस्याओं के बारे में, अपने काम के हालात और जीवन की स्थितियों के बारे में हमें लिखकर भेजें। आप व्हॉट्सएप पर बोलकर भी हमें अपना मैसेज भेज सकते हैं। नम्बर है : 8853476339

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016, फ़ोन: 8853476339
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 9289498250
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 की विरासत को याद करो!

हिन्दू-मुसलमान एकता को बुलन्द कर ‘नये कम्पनी राज’ के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ!!

● सनी

10 मई 1857 के दिन मेरठ में अंग्रेज़ी सेना की बंगाल रेजिमेण्ट के भारतीय सैनिकों ने बग़ावत कर अंग्रेज़ी अफसरों और सैनिकों को मार डाला और बैरकों और अंग्रेज़ी हुकूमत के दफ़्तरों को आग के हवाले कर दिया। मेरठ में बग़ावत हो चुकी थी और इसमें सैनिकों का साथ आम किसानों से लेकर दस्तकारों ने दिया। यह देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत थी। विद्रोही सैनिकों ने दिल्ली की ओर कूच कर दिया। कश्मीरी गेट पर तैनात अंग्रेज़ी नाके को ध्वस्त कर दिया गया और लाल क़िले को फ़तह कर लिया। दिल्ली पर विद्रोहियों ने कब्ज़ा कर लिया और मुगल वंशज बहादुर शाह ज़फ़र को हिन्दुस्तान का बादशाह घोषित कर दिया गया, जो तब तक हिन्दुस्तान में वास्तविक राजनीतिक सत्ता खो चुके थे और एक स्टैम्प मात्र बनकर रह गये थे। आम जनता ने विद्रोही सैनिकों का साथ दिया। अंग्रेज़ी हुकूमत के आगे सिर झुकाने की जगह लड़ने के लिये कुछ राजे-रजवाड़े भी तैयार हो गये और कइयों ने ग़द्दारी भी की। सैनिको, किसानों और दस्तकारों के विद्रोह की आग कानपुर, अवध, बिहार, बंगाल से लेकर झाँसी तक पहुँच गई। इस विद्रोह ने ग़रीब की झोपड़ी से लेकर राजे-रजवाड़ों के महलों को भी चपेट में ले लिया। इस स्वतंत्रता संग्राम ने अंग्रेज़ी शासन की चूलें हिला दी थी। भारत के बड़े भूभाग तक फैले उस संघर्ष को कुचलने में अंग्रेज़ों को 1 साल से अधिक समय लग गया। इस दौरान जनता ने ज़बरदस्त कुर्बानियाँ दीं। न सिर्फ़ आम जन बल्कि रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हज़रत महल, नाना साहब, कुंवर सिंह जैसी छोटी रियासतों के राजे-रजवाड़े भी इस संघर्ष में जान की बाज़ी लगाकर कूद पड़े थे।

अंग्रेज़ भारत में व्यापारी बनकर आए थे लेकिन 18वीं शताब्दी तक पूरे भारत को गुलाम बना लिया। 200 साल की गुलामी ने भारतीय समाज की नैसर्गिक गति को कुचल दिया। दस्तकार बर्बाद हो गए, किसानों पर लगान व करों का बोझ डालकर उनकी कमर तोड़ कर रख दी गयी, भारतीय सैनिकों के साथ दोयम दर्ज़े का व्यवहार किया गया और नस्ल के आधार पर भारतीय जनता को क़दम-क़दम पर बेइज़्ज़त किया गया। 200 साल की गुलामी ने भारतीय जनता को उसके अतीत से काट दिया। अपनी ही ज़मीन पर विदेशी आक्रान्ताओं की गुलामी का दंश झेलती जनता गुलामी के ख़िलाफ़ बिना रुके लड़ती रही। 1857 इस संघर्ष-चक्र में वह मील का पत्थर है जब देश के एक बड़े हिस्से ने एक साथ मिलकर विद्रोह कर दिया। इस संग्राम में अंग्रेज़ी औपनिवेशिक हुकूमत के खिलाफ़ लाखों सैनिकों और आम जनता ने भाग लिया था। पूरे ब्रिटिश भारत का एक चौथाई हिस्सा मुक्त कर लिया गया था। यह विद्रोह ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कम्पनी राज के खिलाफ़ था।

इस संघर्ष में हिन्दू-मुसलमान सबने साथ मिलकर खून बहाया। सैनिकों, किसानों, दस्तकारों, साधुओं, फ़कीरों, नाविकों से लेकर कुछ राजे-रजवाड़ों ने अंग्रेज़ी हुकूमत के खिलाफ़ फ़ौलादी हिन्दू-मुसलमान एकता का परिचय दिया था। इतिहास के सबसे बहादुराना संघर्षों में से एक इस संग्राम को जीता न जा सका। लेकिन इतिहास हमें सिखाता है कि यह इसलिये ही हारा गया ताकि भविष्य की लड़ाइयाँ जीती जा सकें। अभी राष्ट्रीय मुक्ति की चेतना अपनी भ्रूणावस्था में थी और आरम्भिक देशभक्ति की चेतना के साथ जनसमुदायों ने इस लड़ाई में हिस्सा लिया था। साथ ही, अभी कोई राष्ट्रीय मुक्ति को नेतृत्व दे सकने वाला आधुनिक राष्ट्रीय नेतृत्व भी नहीं था। भारतीय उपमहाद्वीप एक संक्रमण से गुज़र रहा था और चीज़ें तरल अवस्था में थीं। इसलिए इस संघर्ष के हारे जाने में कोई ताज्जुब की बात नहीं थी। अपने अनगढ़पन और संघर्ष के बिखराव के बावजूद अंग्रेज़ों के कम्पनी राज की जड़ें इस संघर्ष ने हिलाकर रख दी थीं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम हारा गया परन्तु इसने ही अगली सदी में स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी योद्धाओं को लड़ने का जज़्बा और लड़ने का हुनर दिया।

आज हम किसी विदेशी साम्राज्यवादी शक्ति के गुलाम नहीं हैं। भारत को राजनीतिक स्वतन्त्रता 1947 में हासिल हो गयी थी। लेकिन यह भी सच है कि यह वह भारत नहीं है जिसका सपना भगतसिंह ने फाँसी के तख़्ते पर जाने से पहले देखा था। 1947 में साम्राज्यवादी ब्रिटिश हुक्मरान जनता के संघर्षों से डरकर सत्ता की बागडोर भारतीय पूँजीपति के हाथ में छोड़ गए। 1947 के बाद क्रमिक विकास–प्रक्रिया से भारतीय पूँजीपति वर्ग ने आधे-अधूरे ढंग से पूँजीवादी विकास के कार्यभारों को ग़ैर-क्रान्तिकारी रास्ते से पूरा किया। यानी, न तो क्रान्तिकारी भूमि सुधार देश में लागू किये गये, न ही जनता की अन्य जनवादी आकांक्षाओं को समुचित रूप में पूरा किया गया। अंग्रेज़ों के दमनकारी क़ानूनों को कुछ बदलावों के साथ अपना लिया गया और एक ऐसा संविधान बनाया गया जो देश की जनता को बेहद सीमित जनवादी अधिकार देता है।

1857 में अपना खून बहाने वाले किसानों, सैनिकों और आम जन के सपनों की डोर को भगतसिंह और उनके साथियों ने थामा और उसे मज़दूरों-मेहनतकश के राज के सपने के रूप में आगे बढ़ाया था। यह सपना आज भी अधूरा है और इसे हमें ही पूरा करना होगा। आज हमें एक बार फिर से अपने पुरखों की फ़ौलादी हिम्मत और शोषण के खिलाफ़ बग़ावती ख़यालों से सीखना होगा। आज महँगाई और बेरोज़गारी से पूरा देश त्रस्त है; शिक्षा, चिकित्सा, आवास, यातायात और अन्य जन सुविधाओं का निजीकरण हो चुका है और जनता की सम्पत्ति और उसकी आय को पूँजीपतियों के हवाले किया जा रहा है। भ्रष्टाचार को क़ानूनी जामा दे दिया गया है और नेता घोटालों और घपलों के रिकार्ड तोड़ने के बाद भाजपा की वॉशिंग मशीन में धुलकर “पावन-पवित्र” होकर मन्त्री और मुख्यमन्त्री बन रहे हैं। बुर्जुआ जनवादी संस्थाओं को अन्दर से खोखला बना दिया गया है। हम एक अघोषित आपातकाल में जी रहे हैं। हम असल में एक ‘नये कम्पनी राज’ में जी रहे हैं। हम अपने वास्तविक मुद्दों पर एकजुट होकर संघर्ष न कर सकें इसलिए ही भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अंग्रेज़ों की तरह ‘फूट डालो और राज करो’ की नीति के तहत जनता को धर्म के नाम पर बाँट रहे हैं। संविधान में सेक्युलरिज़्म की बातें लिखे होने के बावजूद पश्चिम बंगाल में चुनाव जीतने के बाद भाजपा के सुवेन्दु अधिकारी खुलेआम इसे हिन्दुओं की जीत बता रहे हैं और मुसलमानों को सबक सिखाने की बातें कर रहे हैं!

ऐसे में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की विरासत हमारे लिए बेहद ज़रूरी बन जाती है। हमें अपने और अपने बच्चों के भविष्य को बचाने के लिए अपने अतीत के संघर्षों और अपने पुरखों से सीखना होगा और उनकी स्मृति से शक्ति लेनी होगी। 1857 की विरासत इतिहास की किताबों में पड़ी मृत इबारत नहीं हैं बल्कि हमें रास्ता दिखाती है। 1857 की विरासत 1947 तक आकर नहीं ख़त्म हो जाती है और न ही केवल संग्राहलयों में समेटी जा सकती है बल्कि यह उसके वारिसों को शोषण और अत्याचार के खिलाफ़ लड़ने का पैग़ाम देती है।

1857: जब गरीबों की झोपड़ी से लेकर राजा-रजवाड़ों के महलों तक पहुँची संग्राम की लपटें

1857 में ही अम्बाला छावनी से लेकर देश की तमाम छावनियों में रह-रहकर विद्रोह की चिंगारियाँ फूट रहीं थी। इस बग़ावत का तात्कालिक कारण अंग्रेज़ों द्वारा सैनिकों को दी जाने वाली एनफिल्ड राइफ़ल थी जिसमें डाले जाने वाले कारतूस को मुँह से फाड़ने की ज़रूरत पड़ती थी। इसमें सूअर और गाय की चर्बी का इस्तेमाल होता था। हिन्दू और मुसलमान सैनिकों ने अपने धार्मिक विश्वासों के चलते इसके खिलाफ़ आवाज़ उठाई जिसे बेरहमी से कुचल दिया गया। अंग्रेज़ों ने तुरन्त ही समाहार करते हुए इस राइफ़ल को लोड करने के तरीक़े को बदल दिया। लेकिन सतह के नीचे धधक रहे लावे को फूट पड़ने से वे रोक न सके। सैनिकों में अंग्रेज़ी शासन के खिलाफ़ लम्बे समय से इकट्ठा हो रहा असन्तोष का ताप आक्रोश की ज्वाला में तब्दील हो चुका था। भारतीय सैनिकों की आय में अंग्रेज़ सैनिकों से बड़ा अन्तर था और उनकी पदोन्नति हज़ारों तरीक़ों से रोकी जाती थी; बैरकों में रहने की जगह, खाना खाने के स्थान से लेकर हर जगह उन्हें नस्ली भेदभाव और ग़ुलाम कौम के अपमान का अहसास दिलाया जाता था। हिन्दुस्तानी सैनिकों को अनुशासनहीनता के लिए बेहद कठोर दण्ड दिया जाता था।

दूसरी बात यह है कि सैनिक दरअसल वर्दी में किसान ही थे। आम किसानों पर अंग्रेज़ों ने लगान वसूली को मुगलों, मराठों और सिख सामन्ती राज के मुकाबले कई गुना बढ़ा दिया था। स्थायी बन्दोबस्त, रैयतवारी और महालवारी प्रणाली के द्वारा भूमि-सम्बन्धों को बदलकर नयी सामन्ती व अर्द्धसामन्ती भूमि व्यवस्था क़ायम की गयी थी। लगान न देने पर खेत ज़ब्त कर लिया जाता था, विरोध करने वालों को मार दिया जाता था, जेल भेजा जाता था और कोड़े बरसाये जाते थे। सैनिकों में इसके खिलाफ़ गुस्सा लम्बे समय से आकार ले रहा था जो उनके किसान चरित्र को दिखाता था। भारत के दस्तकारों से भी कम्पनी ने प्लासी के युद्ध के बाद से मनचाही कर-उगाही की शुरुआत कर दी। दस्तकारों से माल भी मनमानी क़ीमतों पर हड़पा जाने लगा। यही किसानों के साथ भी हुआ। किसानों-दस्तकारों की तबाही शुरू हो गई। यहाँ के दस्तकारी वर्कशाप के कारखाने व काम-धन्धे अंग्रेज़ों ने अपने औपनिवेशिक आर्थिक हितों को पूरा करने के लिए बर्बाद कर दिये।

भारत की शस्य-श्यामला धरती के जंगलों, खेतों, खानों-खदानों के दोहन से प्राप्त कच्चा माल ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति का आधार बना। कच्चे माल के दोहन ने जहाँ देश की प्रकृति की लूट को अंजाम दिया तो दूसरी ओर अंग्रेज़ी उद्योग के सस्ते मालों से ‘मुक्त प्रतिस्पर्धा’ में दस्तकार पूरी तरह बर्बाद हो गये। दस्तकार गाँव की ओर लौटने लगे या शहरों में काम की तलाश करने लगे। छोटी रियासतों और छोटे सामन्ती राजे-रजवाड़ों को भी अंग्रेज़ों ने बेइज़्ज़त किया था। अंग्रेज़ों ने भारत पर एक ऐसे औपनिवेशिक तंत्र को थोप दिया जिसमें भारत की किसानी व्यवस्था, दस्तकारी और आम जीवन का पुराना सामाजिक-आर्थिक ताना-बाना तहस-नहस हो रहा था।

हम आज भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को जब 169 साल बाद याद कर रहे हैं तो हमें सबसे पहले यह समझना होगा कि यह भारत का पहला स्वतंत्रता संग्राम था। इसमें नष्ट होते पुराने भारत के अतीत की शक्तियों ने भी भागीदारी की और औपनिवेशिक संरचना में उभरते भारत की उदीयमान शक्तियों ने भी भागीदारी की। साम्राज्यवादी टट्टू इसे केवल सैनिक विद्रोह या धार्मिक युद्ध बोलकर आम जनता की लड़ाई को भुलाने की कोशिश करते हैं लेकिन यह केवल तात्कालिक धार्मिक कारण से भड़क उठा सैन्य-विद्रोह नहीं बल्कि ऐसा संग्राम था जिसमें देश के बड़े हिस्से की जनता के विविध हिस्सों ने भाग लिया। यह एक जन-प्रतिरोध युद्ध था। कम्पनी राज की शुरुआत से ही देश के अलग-अलग इलाक़ों में किसानों और आदिवासियों ने लगातार विद्रोह किये थे। लेकिन उनकी तुलना में 1857 का जनसंघर्ष देश के कहीं ज्यादा बड़े हिस्से में फैला हुआ और ज़्यादा संगठित था।

यह सच है कि इस स्वतंत्रता संग्राम का कोई दूरदर्शी केन्द्रीय नेतृत्व नहीं था जिसके पास भविष्य की शासन-व्यवस्था एवं सामाजिक ढाँचे के बारे में कोई सुविचारित रूपरेखा हो। सामन्ती राजे-रजवाड़े अपने अतीत की ज़मीन से लड़ रहे थे। किसानों, दस्तकारों, शहरी ग़रीबों और आमतौर पर किसान परिवारों से भरती सैनिकों और उनके नेताओं के ज़ेहन में एक ओर अतीत की ही ज़मीन थी और दूसरी ओर सैनिकों, किसानों, दस्तकारों और शहरी गरीबों में भ्रूण रूप में राष्ट्रीय चेतना भी जन्म ले चुकी थी। उनकी दोहरी चेतना थी और इस मायने में यह ‘पुराने भारत का अन्तिम प्रतिरोध-युद्ध’ भी था और ‘नये भारत का पहला स्वाधीनता संग्राम’ भी था। यही दोहरी चेतना रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हज़रत महल, कुँवर सिंह और तात्या टोपे सरीखे सामन्तों और सैन्य कमिटियों के दोहरे नेतृत्व के रूप में भी झलकती है। दीपायन बोस ने इसपर ठीक ही कहा है कि “इतिहास के एक विशेष संक्रमण-बिन्दु में लड़े गये 1857 के महासंग्राम का दोहरा चरित्र था। यह पुराने भारत का अन्तिम

(पेज 16 पर जारी)

संसद में खुलासा : विदेशों में हर दिन 20 से अधिक भारतीय मज़दूरों की मौत

● गुरुदास सिधानी

भारत में ऐतिहासिक तौर पर मज़दूरों की कार्य और जीवन-स्थितियाँ बहुत अच्छी नहीं रही है। चाहे वह औपनिवेशिक काल हो या स्वतन्त्र भारत का समय, हर दौर में मज़दूरों का जमकर शोषण हुआ है और धन्नासेठों ने उनकी मेहनत की लूट से अपनी तिजोरियाँ भरी हैं। हमारे देश में पूँजीपति वर्ग और उनकी सरकारों की मज़दूर-विरोधी नीतियों के विरुद्ध मज़दूरों के प्रतिरोध, आन्दोलनों, हड़तालों और संघर्षों का एक जीवन्त इतिहास भी है। मज़दूरों ने जो भी श्रम अधिकार हासिल किये हैं वे इन संघर्षों के बूते ही हासिल किये हैं।

वर्तमान समय में हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं, जहाँ मज़दूरों की ज़िन्दगी दिन-प्रतिदिन मुनाफ़े की भेंट चढ़ रही है। कहने को तो भारत सरकार और राज्य सरकारों ने मज़दूरों के अधिकारों के लिए लम्बे-चौड़े क़ानून बनाये हैं, लेकिन ज़मीनी स्तर पर उनका आकलन किया जाये तो वे काग़ज़ के टुकड़ों पर लिखे महज़ शब्द ही प्रतीत होते हैं, जिन्हें धरातल पर आने से पहले ही तोड़-मरोड़ दिया जाता है। और अब मोदी सरकार के लेबर कोड आने के साथ तो काग़ज़ों से भी मज़दूरों के ये श्रम अधिकार प्रभावत: मिटाये जा चुके हैं। वैसे भी फ़ैक्ट्री और कारखानों के मालिक जब अलग-अलग चुनावी पार्टियों को करोड़ों रुपये का चन्दा देते हैं, तो यह मान लेना कठिन हो जाता है कि ये क़ानून उनके ख़िलाफ़ जाकर मज़दूरों को कभी न्याय दिला सकते हैं।

वैसे तो हमेशा से ही ऐसा होता रहा है, पर वर्तमान समय में कारखानों में दुर्घटनाएँ एक आम बात हैं, जिनमें मज़दूर कभी आग की भेंट चढ़ जाते हैं तो कभी ज़हरीली गैस के सम्पर्क में आकर अपनी जान गँवा देते हैं। यदि सरकारी आँकड़ों को ही देखें, जिन्हें सरकार ने स्वयं संसद में पेश किया है, तो यह सामने आता है कि भारत की रजिस्टर्ड फैक्ट्रियों में प्रतिदिन औसतन 3 मज़दूरों की मौत होती है। इनमें से भी सभी घटनाओं की सूचना दर्ज नहीं होती। यदि सभी घटनाएँ दर्ज की जाएँ, तो यह आँकड़ा इससे कई गुना अधिक हो सकता है। यह आँकड़ा केवल रजिस्टर्ड फैक्ट्री मज़दूरों का है। वास्तव में, भारत में केवल लगभग 10 प्रतिशत मज़दूर ही रजिस्टर्ड फैक्ट्रियों में कार्यरत हैं। शेष 90 प्रतिशत मज़दूर अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े हुए हैं, जहाँ सुरक्षा मानकों में कमी और न्यूनतम ख़र्च की नीति के कारण वे आये-दिन दुर्घटनाओं का शिकार हो रहे हैं। फैक्ट्रियों में मज़दूरों को पर्याप्त प्रशिक्षण दिये बिना तथा उचित सुरक्षा उपकरणों के अभाव में ही काम पर लगा दिया जाता है। मालिक वर्ग की अधिक से अधिक उत्पादन करने और मुनाफ़े की अन्धी दौड़ मज़दूरों को अपनी जान से हाथ धोने के लिए मजबूर कर रही है।

भारत के मज़दूरों की यह दयनीय स्थिति केवल देश के भीतर ही नहीं है, बल्कि विदेशों में रोज़गार की तलाश में गए भारतीयों के लिए यह स्थिति और भी गम्भीर रूप में मौजूद है। आम लोगों को यह लगता है कि विदेशों में जाकर उनकी स्थिति सुधर जायेगी और वहाँ के कानून अधिक प्रभावी होंगे, मज़दूरी अधिक होगी, अधिक श्रम अधिकार होंगे, लेकिन सच्चाई इसके विपरीत और बेहद भयावह है। विदेश मामलों के राज्य मंत्री कीर्ति वर्धन सिंह द्वारा राज्यसभा में दिए गए लिखित उत्तर के अनुसार, पिछले पांच वर्षों (2021-2025) में विदेशों में 37,740 भारतीय श्रमिकों की मृत्यु हुई है। इसका अर्थ है कि प्रतिदिन औसतन 20 से अधिक भारतीय कामगार अपनी जान गँवा रहे हैं। हालाँकि यह आँकड़े केवल उन्हीं मामलों पर आधारित हैं जो आधिकारिक रूप से दर्ज किये गये हैं। वास्तविकता इससे कहीं अधिक गम्भीर हो सकती है, क्योंकि अनेक घटनाएँ या तो दर्ज ही नहीं हो पातीं या फिर पूँजीपतियों और उनकी सरकारों द्वारा उन्हें दबा दिया जाता है। ऐसे में यह मानना ग़लत नहीं होगा कि मज़दूरों की मौतों का वास्तविक आँकड़ा इससे कहीं अधिक हो सकता है। आँकड़ों के अनुसार, सबसे अधिक 8,234 मौतें वर्ष 2021 में हुईं। 2022 में यह संख्या घटकर 6,614 हुई, लेकिन इसके बाद फिर लगातार वृद्धि दर्ज की गई। 2023 में 7,291, 2024 में 7,747 और 2025 में 7,854 मज़दूरों की मौत हुई। देशवार आँकड़ों पर नज़र डालें तो कुल मौतों में से लगभग 86 प्रतिशत खाड़ी देशों में हुई हैं। इनमें संयुक्त अरब अमीरात (12,380) और सऊदी अरब (11,757) सबसे ऊपर हैं। इनके बाद कुवैत (3,890), ओमान (2,821), मलेशिया (1,915) और क़तर (1,760) का स्थान है। ये वे देश हैं जहाँ पूँजीवाद का सबसे अमानवीय और विकृत मॉडल लागू है और मज़दूरों की स्थिति ग़ुलामों जैसी है। विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों को भारतीय नागरिकों से दुर्व्यवहार, शोषण और कार्यस्थल से जुड़ी कुल 80,985 शिकायतें प्राप्त हुई हैं। इनमें सबसे अधिक शिकायतें संयुक्त अरब अमीरात (16,965) से आईं, इसके बाद कुवैत (15,234), ओमान (13,295) और सऊदी अरब (12,988) का स्थान रहा।

खाड़ी देशों के बाहर भी स्थिति चिन्ताजनक है। मलेशिया में 8,333 और मालदीव में 2,981 शिकायतें दर्ज की गयीं। दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में 2024-25 के दौरान शिकायतों में तेज़ वृद्धि देखी गयी। म्यांमार में 2025 में 2,548 शिकायतें दर्ज की गईं, जबकि कम्बोडिया में 2,531 शिकायतों के मुकाबले 31 मौतें और लाओस में 2,416 शिकायतों के मुक़ाबले 11 मौतें दर्ज की गईं। यह उल्लेखनीय है कि श्रम-सम्बन्धी समस्याओं में लगातार वृद्धि हुई है। 2021 में जहाँ 11,632 शिक़ायतें दर्ज की गयी थीं, वहीं 2025 में यह संख्या बढ़कर 22,479 हो गई, जो कि लगभग दोगुनी है।

आखिर सवाल यह है कि इतनी कठिनाइयों और खतरों के बावजूद भारतीय कामगार विदेश जाने के लिए मजबूर क्यों होते हैं? पहला कारण है रोजगार की कमी। देश में हर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार काम नहीं मिल पाता, खासकर मज़दूर वर्ग को। दूसरा कारण है कम वेतन। भारत में महीनों मेहनत करने के बाद भी जितनी कमाई होती है, उतनी सैलरी उन्हें संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब और कुवैत जैसे देशों में एक माह में मिल जाती है, हालाँकि इसके बदले में मज़दूरों की अपनी सभी स्वतन्त्रताएँ गिरवी रखनी पड़ती हैं। अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए विदेश जाने वाले मज़दूर ये कुर्बानियाँ करने को बाध्य होते हैं। तीसरा कारण है पारिवारिक जिम्मेदारियाँ। बच्चों की पढ़ाई, माता-पिता का इलाज और घर चलाने का दबाव। चौथा कारण है कर्ज़ और आर्थिक मजबूरी। कई लोग उधार लेकर विदेश जाते हैं ताकि अधिक कमाकर उस कर्ज़ और पुराने कर्जों को चुका सकें। पाँचवाँ कारण है बेहतर भविष्य का सपना, जो उन्हें अपना देश छोड़ने पर मजबूर कर देता है। और छठा कारण है कबूतरबाज़ी करवाने वाले एजेण्टों के झूठे वादे, जो सुनहरे सपने दिखाकर लोगों को ऐसी जगह भेज देते हैं जहाँ हक़ीक़त बिल्कुल अलग होती है। यानी, साफ़ है कि विदेश जाना इन लोगों की पसन्द कम और मजबूरी ज़्यादा है। अब असली सवाल यहीं से शुरू होते हैं। क्या हमारे देश के मज़दूरों की ज़िंदगी इतनी सस्ती हो गई है कि हर दिन 20 मौतें भी हमें झकझोर नहीं पा रहीं? अगर मौजूदा व्यवस्था सही और सन्तोषजनक है, तो फिर इतने बड़े पैमाने पर मौतें क्यों हो रही हैं? 80 हज़ार से ज्यादा शिक़ायतों के बावजूद हालात सुधरने के बजाय और ख़राब क्यों हो रहे हैं? क्या विदेश भेजने से पहले मज़दूरों की सुरक्षा की कोई ठोस गारण्टी की जाती है, या सिर्फ कागज़ों में सब कुछ पूरा दिखाकर खानापूरी कर ली जाती है? क्यों भारतीय कामगारों को आज भी अपने ही बुनियादी और न्यूनतम अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है? क्या जिन देशों के साथ समझौते किए गए हैं, उनका ज़मीनी स्तर पर कोई असर दिखता है? क्या विश्वगुरू मोदी ने इस बाबत कुछ भी किया है? भारतीय दूतावासों की भूमिका कितनी प्रभावी है, और कितने लोगों को वास्तव में न्याय मिल पाता है? क्या मज़दूरों की मौत के बाद उनके परिवारों को उचित सहायता मिलती है, या वे अकेले ही संघर्ष करते रह जाते हैं? आख़िर कब तक भारत का आम मज़दूर अपने सपनों की क़ीमत देश और विदेश दोनों ही जगहों पर अपनी जान देकर चुकाता रहेगा? ये वे सवाल हैं जो हर कामगार के दिल को झकझोर देते हैं।

कानून की पवित्रता तभी तक रखी जा सकती है जब तक वह जनता के दिल यानी भावनाओं को प्रकट करता है। जब यह शोषणकारी समूह के हाथों में एक पुर्जा बन जाता है तब अपनी पवित्रता और महत्व खो बैठता है। न्याय प्रदान करने के लिए मूल बात यह है कि हर तरह के लाभ या हित का खात्मा होना चाहिए। ज्यों ही कानून सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करना बन्द कर देता है त्यों ही जुल्म और अन्याय को बढ़ाने का हथियार बन जाता है। ऐसे कानूनों को जारी रखना सामूहिक हितों पर विशेष हितों की दम्भपूर्ण जबरदस्ती के सिवाय कुछ नहीं है।

- कमिश्नर, विशेष ट्रिब्यूनल, लाहौर साजिश केस, लाहौर के नाम भगत सिंह सहित छह क्रांतिकारियों द्वारा लिखे पत्र से

देश के पहले स्वतंत्रता संग्राम 1857 की बग़ावत के अवसर पर शाहबाद डेरी में आयोजित किये गये कार्यक्रम

देश के पहले स्वतंत्रता संग्राम 1857 की बग़ावत की 169वीं वर्षगाँठ (10 मई) के अवसर पर हिन्दू-मुस्लिम एकता अभियान के तहत भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) द्वारा शाहबाद डेरी (दिल्ली) इलाक़े में अभियान चलाया गया। इस दौरान घर-घर जाकर, गली मीटिंग और पर्चा वितरण के ज़रिये 1857 कि विरासत से लोगों को अवगत कराया गया। इसी कड़ी में 10 मई को शाहबाद डेरी के महाराणा प्रताप चौक पर जनसभा का आयोजन किया गया। जनसभा की शुरुआत क्रान्तिकारी नारों के साथ की गयी। इसके बाद साथी नौरीन ने सभा का संचालन करते हुए कार्यक्रम की रुपरेखा और आज के वक़्त में 1857 की क्या प्रासंगिकता है और हमें इससे क्या सीखना चाहिए, पर बात रखी।

इसके बाद साथी अदिति ने 1857 के संग्राम के बारे में विस्तार से बताया। इस विद्रोह की सबसे अहम बात क्या थी? हम आज भला 169 साल पुरानी इस घटना को क्यों याद कर रहे हैं? इसलिए क्योंकि इस विद्रोह में एक ख़ास बात देखने में आयी। यह बात थी देश के हिन्दुओं और मुसलमानों की फ़ौलादी एकता। इसके बाद से ही अंग्रेज़ों ने यह सबक लिया कि अगर देश के मेहनतकश हिन्दू और मुसलमान साथ होकर लड़ेंगे, तो उनकी हुक़ूमत के बस बचे-खुचे दिन ही बाक़ी होंगे। नतीजतन, ब्रिटिश शासन ने स्वयं ऐसे धार्मिक कट्टरपंथी संगठनों को प्रश्रय और बढ़ावा देने की शुरुआत की जो ग़ुलामी और शोषण के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्ष को हिन्दू-मुसलमान के नाम पर तोड़ दें। 1857 के जनविद्रोह से घबराकर अंग्रेज़ों ने जनता कि एकता को तोड़ने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की न नीति अपनाई। इसी नीति को आज आगे बढ़ाने का काम नये तौर-तरीक़ों के साथ आरएसएस और मोदी सरकार कर रही है। आज के फ़ासीवादी दौर में मोदी सरकार लगातार लोगों को हिन्दू-मुसलमान के नाम पर बाँट रही है। 'लव जिहाद', गोरक्षा की नौटंकी जैसे नक़ली और झूठे मुद्दे उठाकर लोगों को उनके जीवन के वास्तविक मुद्दों जैसे महँगाई, बेरोजगारी, शिक्षा, चिकित्सा आदि से भटका रही है। ऐसे वक़्त में ये और भी ज़रूरी हो जाता है कि 1857 के विद्रोह के बारे में जाना जाये और इससे प्रेरणा लेकर हिन्दू मुस्लिम एकता स्थापित की जाये।

इसके बाद साथी ज्योति ने देशभर में चल रहे मज़दूर आन्दोलन और सरकार द्वारा मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं के बर्बर दमन के बारे में बताया। आज सत्ता में एक ऐसी सरकार है जो पूरी तरह से पूँजीपरस्त है। मोदी सरकार दिन-रात मज़दूरों का शोषण करके पूँजीपतियों की तिजोरियाँ भरने में व्यस्त है। जब मज़दूर अपने हक़ की बात करते हैं तो उनके ऊपर लाठियाँ बरसाई जाती हैं। जेलों में बन्द किया जाता है। इसका उदाहरण अभी हाल ही में गुड़गाँव-मानेसर और नोएडा में देखने को मिला है। इस बात की तमाम रिपोर्टें और प्रमाण सामने आ रहे हैं कि वेतन बढ़ोत्तरी कि माँग कर रहे मज़दूरों और उनकी माँगों का समर्थन कर रहे मज़दूर कार्यकर्ताओं व सामाजिक कार्यकर्ताओं को ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से अगवा करके उनका बर्बर दमन किया जा रहा है। सरेआम दिन-दहाड़े सादी वर्दी में उत्तर प्रदेश पुलिस के लोग किसी को उसके घर से तो किसी को मेट्रो स्टेशन से अगवा कर ले रहे हैं। सारी क़ानूनी प्रक्रियाओं को रौंदते हुए यूपी पुलिस 40 घण्टे से ज़्यादा बीत जाने के बाद अगवा किये गये कार्यकर्ताओं को मजिस्ट्रेट के सामने पेश कर रही है जबकि क़ानूनन उन्हें 24 घण्टे के भीतर नज़दीकी मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाना चाहिए था। इसके अलावा, अब तक सामने आयी रपटों व ख़बरों के अनुसार यह सवाल खड़ा हो रहा है कि मज़दूरों के शान्तिपूर्ण आन्दोलन को बदनाम करने के लिए कहीं कोई साजिश तो नहीं की गयी है? और इसमें नोएडा पुलिस की संदेहास्पद भूमिका क्या है? इसकी उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच की आवश्यकता है। आम मेहनतकश जनता के टैक्स से चलने वाली ये सरकारें मालिकों के लिए काम कर रही है। इस महँगाई के दौर में 10-12 हज़ार रुपये महीना में मज़दूरों को 12 घण्टे खटाया जा रहा है। आज भगतसिंह की बात शब्दशः सच साबित हो रही है जिसमें वह कहते हैं कि 'इससे क्या फ़र्क़ पड़ेगा, यदि लार्ड इरविन की जगह सर तेज़ बहादुर सप्रू आ जायें।'

देश कोई कागज़ पर बना नक़्शा नहीं होता, बल्कि उसमें रहने वाले मेहनतकश लोगों से बनता है। आज फ़ासीवादी मोदी सरकार उन्हीं लोगों को शिक्षा, नौकरी, आवास, स्वास्थ्य का अधिकार नहीं दे पा रही है, तो उन्हें धर्म के नाम पर लड़वा रही है और जो उसके विरुद्ध आवाज़ उठाता है, उसे "देश का दुश्मन" बता देती है। "अर्बन नक्सल", "बांग्लादेशी", "पाकिस्तानी", "आतंकवादी" कहकर उनका मीडिया ट्रायल चलाया जाता है। यह बात हमें समझनी होगी कि आज फ़ासीवादी मोदी सरकार हमारे देश को साम्प्रदायिक तनाव और हिंसा की आग में झोंक रही है। हमें 1857 कि विरासत से प्रेरणा लेकर फिर से हिन्दू-मुसलमान और अन्य सभी धर्मों की आबादी की फ़ौलादी एकता बनानी होगी और एकजुट होकर इस सरकार की जनविरोधी व मज़दूर-विरोधी नीतियों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना होगा।

बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में ज़ारी मज़दूर आन्दोलन के समर्थन में व राजकीय दमन के विरोध में, मई दिवस के अवसर पर और 1857 विद्रोह की 169वीं वर्षगाँठ के अवसर पर किये गये कार्यक्रमों की संक्षिप्त रिपोर्ट

● बिगुल संवाददाता

बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन द्वारा 12 व 27 अप्रैल बवाना सेक्टर 5 व बवाना जे.जे. कॉलोनी में नोएडा, गुड़गाँव-मानेसर और फ़रीदाबाद और नोएडा में पुलिस द्वारा किये जा रहे मज़दूरों व राजनीतिक कार्यकर्ताओं के दमन के ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन

इस विरोध प्रदर्शन में यूनियन के साथी आशीष ने अपनी बात रखते हुए बताया कि गुड़गाँव-मानेसर से लेकर फरीदाबाद और नोएडा तक मज़दूर बढ़ती महँगाई, घटती वास्तविक मज़दूरी, असुरक्षा और काम के बढ़ते घण्टों के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द कर रहे हैं और सड़कों पर उतरकर हड़ताल में शामिल हो रहें हैं। ऐसे में फ़ासीवादी भाजपा-आरएसएस का मज़दूर-विरोधी चरित्र मज़दूरों के सामने साफ़ होता जा रहा है। मानेसर में पुलिस और पुलिस के दमनकारी विभाग 'सीआईए' स्टाफ़ ने शान्तिपूर्ण तरीके से चल रही हड़ताल में मज़दूरों का जिस प्रकार दमन किया और उनकी जायज़ माँगों को कुचल दिया इससे हरियाणा की भाजपा सरकार का रवैया साफ़ हो गया। वह मुनाफ़े की मशीनरी की प्रचालन में किसी प्रकार की बाधा नहीं चाहती चाहे इसके लिए मज़दूरों की हड्डियों का चूरा ही क्यों न बनाना पड़े। मज़दूरों के संघर्षों की श्रृंखला की शुरुआत वास्तव में फ़रवरी में बरौनी और फिर पानीपत में ही हो गयी थी। इसके बाद सूरत, भरूच, सालेम तक मज़दूरों का असन्तोष फूटा और हड़तालें हुई। अप्रैल में यह संघर्ष मानेसर और फिर नोएडा, फरीदाबाद से लेकर पंजाब और उत्तराखण्ड तक पहुँच चुका है। साथी आशीष ने यह भी बताया कि 5 अप्रैल को ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन (AICWU) के कार्यकर्ता शाम मूर्ति और 9 अप्रैल को मज़दूर कार्यकर्ता वीरेन्द्र को भी ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से हिरासत में लिया

(पेज 6 पर जारी)

मई दिवस के अवसर पर और 1857 विद्रोह की 169वीं वर्षगाँठ के अवसर पर किये गये कार्यक्रमों की संक्षिप्त रिपोर्ट

(पेज 5 से आगे)

गया और देर रात तक थाने में बैठाकर प्रताड़ित किया गया। वीरेन्द्र के साथ मारपीट की गयी और उनकी पत्नी के साथ बदसलूकी की गयी। वीरेन्द्र को लम्बे समय तक डराने-धमकाने के बाद उनसे बन्दूक की नोक पर खाली काग़ज़ पर हस्ताक्षर कराये गये और कहा गया कि उन्हें आगे भी जाँच-पड़ताल के लिए थाने आना पड़ेगा। इसके अलावा, 7 अप्रैल को बिगुल मज़दूर दस्ते से जुड़े साथी सनी और ये गिरफ़्तारियाँ ग़ैर-क़ानूनी तौर-तरीक़ों का इस्तेमाल करके उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा की गयी हैं। गिरफ़्तारी के दौरान कई जगहों पर ग़ैरक़ानूनी तरीक़े से छापेमारियाँ की गयी, बिना सीज़र मेमो दिये सामानों को ज़ब्त कर लिया गया, लोगों को अगवा किया गया और 24 घण्टों के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश भी नहीं किया और न ही गिरफ़्तार लोगों के परिजनों, सहकर्मियों, वक़ीलों या उनके द्वारा नामित व्यक्तियों को कोई सूचना दी किया गया। सभा को सम्बोधित करते हुए वक्ता साथी प्रसेनजीत ने बताया कि इस बार हम मई दिवस ऐसे समय में मना रहे हैं जबकि उत्तर प्रदेश, हरियाणा, उत्तराखण्ड, राजस्थान के मज़दूरों ने अपने जुझारू संघर्षों से फिर से यह साबित कर दिया है कि वे पूँजी की गुलामी सहने वाले महज़ 'बोलने वाले औज़ार' नहीं हैं। जब हक़ और इन्साफ़ की लड़ाई में साथ देने की क़ीमत हमारे साथी, सैकड़ों मज़दूर भाइयों के साथ फ़र्ज़ी मुक़दमों, मानसिक-शारीरिक फ़ीसदी से ज्यादा मज़दूरों को सभी श्रम अधिकारों से वंचित करके उन्हीं जीवन-स्थितियों और कार्य-स्थितियों में धकेला जा रहा है, जिसमें मज़दूर डेढ़ सौ साल पहले थे।

मई दिवस के शहीदों की अगुवाई में मज़दूरों ने अपने वक़्त में कारख़ानों का चक्का जाम कर दिया था। शहादत, दमन-उत्पीड़न के बाद भी मज़दूर डटे रहे और पूरे मज़दूर वर्ग की तरफ़ से उन्होंने अन्ततः पूँजीपतियों की सरकारों से 8 घण्टे काम का हक़ लड़कर छीन लिया नतीजतन, व्यापक मेहनतकश जनता का जीवन बद से बदतर होता जा रहा है। देश के सभी हिस्सों में मज़दूर वर्ग की ऐसी ही स्थिति है, इसलिए मज़दूरों के इस आन्दोलन से फ़ासिस्ट बौखला गये हैं। उन्हें पूरे देश में इस तरह के संघर्ष के फूट पड़ने का डर सता रहा है। चूँकि फ़ासिस्टों के कुकर्म भयंकर जनविरोधी हैं, इसलिए इस आन्दोलन से प्रेरणा लेकर आम जनता के विभिन्न हिस्सों में संघर्ष उठ खड़े होने का भय उनमें व्याप्त है। इसीलिए

सार्थक को ज़ोर-ज़बरदस्ती करते हुए मानेसर में हड़ताल-स्थल से उठा लिया गया। इसी तरह बेलसोनिका यूनियन के महासचिव अजीत सिंह और इन्क़लाबी मज़दूर केन्द्र के सदस्यों को भी हरियाणा पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। अब तक हरियाणा पुलिस ने 55 मज़दूरों पर झूठे इल्ज़ाम लगाकर एफ़आईआर दर्ज की है और उन्हें जेल भेज दिया गया है।

नोएडा में चालीस हज़ार से अधिक मज़दूर हड़ताल में शामिल हुए। ऐसे सबूत तमाम मीडिया रिपोर्टों में सामने आ रहे हैं जो नोएडा पुलिस की हिंसा में सन्देहास्पद भूमिका की ओर इशारा करते हैं और साथ ही गिरफ्तार किये गये सामाजिक कार्यकर्ताओं की बेगुनाही की ओर इशारा करते हैं। देश भर में यह माँग उठ रही है कि मामले की सच्ची जाँच स्वयं उत्तर प्रदेश पुलिस नहीं कर सकती, बल्कि कोई उच्च स्तरीय न्यायिक आयोग ही कर सकता है क्योंकि यह प्रतीत होता है कि बेगुनाह सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हिंसा का झूठा आरोप उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा मढ़ दिया गया है। इसके अलावा पुलिस ने आदित्य आनन्द, रूपेश राय, हिमांशु, आकृति, सृष्टि एवं मनीषा तथा सैकड़ों मज़दूरों को भी गिरफ़्तार किया। तमाम मीडिया संस्थानों में आयी रपटों के अनुसार गयी। पुलिस ने सैकड़ों मज़दूरों को भी अगवा किया और प्रताड़ित किया जिस पर बीबीसी से लेकर दि वायर तक मीडिया में कई रिपोर्टें आ चुकी हैं। इस दौरान गोदी मीडिया ने बेशर्मी की सारी हदों को पार करते हुए इस आन्दोलन को तथा कार्यकर्ताओं को तरह-तरह से बदनाम करने का काम किया और किसी जाँच या मुक़दमे के बिना ही उन्हें दोषी व अपराधी ठहरा दिया ताकि मज़दूर आन्दोलन को बदनाम और ग़ैर-क़ानूनी बनाकर पेश किया जा सके। इस दमन-चक्र के पीछे योगी सरकार और यूपी पुलिस की यही मंशा है कि मज़दूरों के हर तरह के प्रतिरोध को कुचला जाये ताकि भविष्य में पूँजीपतियों की लूट के ख़िलाफ़ किसी प्रकार का प्रतिरोध ना खड़ा हो सके। आशीष ने कहा कि सरकार जितना भी ज़ोर लगाये पर इस खुली लूट के ख़िलाफ़ उठने वाली न्यायसंगत आवाज़ों का दमन नहीं कर सकती। जब तक न्याय नहीं होगा, तब तक मज़दूर और मेहनतकश चुप नहीं बैठेंगे।

बवाना औद्योगिक क्षेत्र में मई दिवस के अवसर पर किया गया सभा का आयोजन!

2 मई को बवाना औद्योगिक क्षेत्र के सेक्टर 3 व सेक्टर 4 में 140वें मई दिवस के अवसर पर सभा का आयोजन उत्पीड़न और जेलों में बन्द होने के रूप में चुका रहे हैं तो इस मई दिवस को हमें इन साथियों की इंसाफ़ की आवाज़ को बुलन्द करने के नाम करना होगा। आज संसदीय वाम पार्टियों की केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने मई दिवस को देश के अधिकांश मज़दूरों के लिए महज़ एक रस्मअदायगी का मौक़ा बनाकर रख दिया है। अधिकतम मज़दूरों को मई दिवस के महत्व के बारे में नहीं पता है और न ही उन्हें इसके गौरवशाली इतिहास के बारे में पता है। ऐसे वक़्त में मज़दूर दिवस पर शिकागो के शहीदों को याद करते हुए 'मज़दूर वर्ग के राजनीतिक चेतना में प्रवेश' करने के इस दिन को याद करना बेहद ज़रूरी बन जाता है। एक बार फिर अनौपचारिकीकरण, भयावह कार्यस्थिति, बेहिसाब काम के घण्टे और मज़दूर-विरोधी तमाम नीतियाँ जैसी चुनौतियाँ दुनिया के मज़दूरों के सामने खड़ी हैं। 1886 के मज़दूर आन्दोलन के बाद मज़दूरों ने जो हक़ जीते थे, जैसे कि आठ घण्टे काम का हक़, न्यूनतम वेतन का हक़, सामाजिक सुरक्षा का हक़, वे सभी आज नवउदारवाद के दौर में मज़दूरों से छीने जा चुके हैं। फ़ासीवादी मोदी सरकार के नये लेबर कोड वास्तव में मज़दूरों के अधिकारों को रद्द करने का नवीनतम क़दम है। हमारे देश में 90 था। लेकिन वर्तमान समय में पूँजी की अपनी गति के चलते पूँजीवादी दुनिया लम्बे आर्थिक संकट से गुज़र रही है। इस स्थिति से निपटने के लिए 1990 के दशक से ही मज़दूरों के हक़ों-अधिकारों पर लगातार हमले "श्रम क़ानूनों में सुधार" के नाम पर किये जा रहे थे। लेकिन पूँजीपति वर्ग इससे संतुष्ट न था। नतीजतन, मेहनतकश जनता की मेहनत को सस्ते दामों पर चूसने और जन-असन्तोष को कुचलने के लिए पूँजीपति वर्ग ने फ़ासीवादी भाजपा को सत्ता सौंप दी ताकि नवउदारवाद की मज़दूर-विरोधी नीतियों के विरुद्ध उठने वाली विरोध की हर आवाज़ को बेरहमी से कुचला जा सके और मज़दूर-मेहनतकश आबादी को धर्म के नाम पर बाँटकर उसकी शक्ति को तोड़ा जा सके। उसके बाद से मोदी सरकार ने अरबों रुपये के चन्दे के बदले पूँजीपतियों के पक्ष में मज़दूरों को गुलामों की तरह खटाने के लिए क़ानूनी इन्तज़ामात करने और साम्प्रयिकता की आग में उन्हें झोंकने में पूरा ज़ोर लगा दिया है। मज़दूरों के काम के घण्टे, ओवरटाइम, न्यूनतम मज़दूरी, पीएफ़-ईएसआई, हड़ताल करने और यूनियन बनाने, कार्यस्थल पर मानवीय स्थिति आदि से सम्बन्धित सभी अधिकारों को बेमानी बना देने के लिए कुख्यात 'चार लेबर कोड' लागू कर दिये गये। मई दिवस के इतिहास को दोहराते हुए फ़ासिस्टों और उनकी पुलिस ने मज़दूर आन्दोलन को कुचलने की साज़िश रची। सरकार द्वारा की जा रही इन तमाम घटिया कार्रवाइयों, दमन-उत्पीड़न के बावजूद जायज़ माँगों और इंसाफ़ के लिए मज़दूर संघर्ष नहीं थमेगा। क्योंकि मज़दूर ज़िन्दा रहने की बुनियादी शर्तों के लिए लड़ रहे हैं। मज़दूरों की यह लड़ाई बिल्कुल जायज़ है और मज़दूरों के जायज़ संघर्षों को कभी दबाया नहीं जा सकता। जैसा कि शिकागो के मई दिवस के शहीद स्पाइस ने फाँसी चढ़ने से पहले क़रीब 140 साल पहले कहा था - "आज तुम एक चिंगारी को कुचल रहे हो लेकिन यहाँ-वहाँ, तुम्हारे पीछे, तुम्हारे सामने, हर ओर लपटें भड़क उठेंगी। यह जंगल की आग है। तुम इसे कभी नहीं बुझा पाओगे।"

देश के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम 1857 की बग़ावत की 169 वीं वर्षगाँठ (10 मई) के अवसर पर चलाया गया 'हिन्दू-मुस्लिम एकता अभियान' और किया गया जनसभा का आयोजन

देश के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम 1857 की बग़ावत की 169वीं वर्षगाँठ (10 मई) के अवसर पर बवाना औद्योगिक क्षेत्र मज़दूर यूनियन

(पेज 7 पर जारी)

मई दिवस के अवसर पर और 1857 विद्रोह की 169वीं वर्षगाँठ के अवसर पर किये गये कार्यक्रमों की संक्षिप्त रिपोर्ट

(पेज 6 से आगे)

द्वारा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता अभियान' चलाया गया। इसके तहत 6-7-8 मई को बवाना औद्योगिक क्षेत्र के सेक्टर 1, 3 और 5 में पर्चा वितरण किया गया और 9 मई को होने वाली जनसभा के लिए मेट्रो विहार में घर-घर जाकर अभियान चलाया गया व पोस्टर लगाये गये। 9 मई के कार्यक्रम को रोकने के लिए दिल्ली सरकार और दिल्ली पुलिस ने पूरी कोशिश की, लेकिन इसके बावजूद जनसभा का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। 7 मई से ही स्पेशल सेल और दिल्ली पुलिस के लोग यूनियन के कार्यकर्ताओं को डराने-धमकाने का काम करने में लगे हुए थे और कह रहे थे कि यह कार्यक्रम रद्द करो। वे मौखिक तौर पर इस कार्यक्रम को रद्द करने का दबाव बना रहे थे और लिखित में कोई भी निषेधाज्ञा देने से इंकार कर रहे थे। देश के फ़ासीवादी हुक़्मरान किस क़दर जनता के संघर्षों से भयाक्रान्त हैं यह इस बात से समझा जा सकता है कि देश की जनता को अपनी आज़ादी की पहली लड़ाई को याद करने से रोका जा रहा है, जब जनता एकजुट होकर अंग्रेज़ों के औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध लड़ी थी! 8 मई को यूनियन के फ़ोन नम्बर पर दिल्ली पुलिस व स्पेशल सेल के लोग डराने-धमकाने के लिए फ़ोन कर रहे थे। इसके बाद, 9 मई की सुबह ही दिल्ली पुलिस के लोग सादी वर्दी में यूनियन के कार्यकर्ता आशीष को बवाना के मेट्रो विहार से एक निजी गाड़ी में उठाकर ले गये। जनदबाव के कारण उन्हें देर शाम को रिहा किया गया। शाम को तयशुदा कार्यक्रम के आधार पर 1857 विद्रोह की वर्षगाँठ पर धूमधाम से मज़दूरों ने यूनियन के नेतृत्व में सभा का आयोजन किया। सभा में बात रखते हुए साथी भारत ने मज़दूरों को बताया कि दिल्ली सरकार और दिल्ली पुलिस चाहे कितनी भी कोशिश करें, हम उनके द्वारा किये जा रहे ऐसे ग़ैर-क़ानूनी कृत्यों से नहीं डरेंगे। अपने शहीदों को याद करना और कार्यक्रम करना हमारा संवैधानिक अधिकार है और अपने अधिकारों के लिए लड़ना हम जारी रखेंगे। साथ ही नोएडा और मानेसर में भी मज़दूर आन्दोलन और कार्यकर्ताओं के दमन पर बात रखी गयी।

आगे जनसभा में बात रखते हुए साथी नौरीन ने कहा कि 1857 की बग़ावत हमारी विरासत है। 10 मई 1857 को लुटेरी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध यह विद्रोह शुरू हुआ था। 1857 की बग़ावत अंग्रेजी राज के ख़िलाफ़ देश की जनता का बहादुरी भरा संघर्ष था, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सभी ने शिरक़त की। धार्मिक बँटवारे को छोड़ एकजुटता की मिसाल कायम करते हुए भारत की जनता ने दमनकारी अंग्रेज़ी राज की चूलें हिला दीं। आज के समय में इसे याद करने का एक ख़ास महत्व है। 1857 के विद्रोह के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी का 'कम्पनी राज' चला गया और शासन को ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथों में ले लिया। जनता के लम्बे संघर्ष के बाद बर्तानवी सरकार का औपनिवेशिक राज 1947 में चला गया। लेकिन 1947 में आज़ाद हिन्दुस्तान की गद्दी पर जो बैठे, वे देश के करोड़ों मज़दूरों, ग़रीब किसानों व मेहनतकशों के नुमाइन्दे नहीं थे, बल्कि शहीदे आज़म भगतसिंह के अनुसार सेठ ठाकुरदास-पुरुषोत्तमदास जैसे लोगों के नुमाइन्दे थे। आज मोदी सरकार के शासन के दौरान पूँजीपतियों के समूचे वर्ग की जिस बेशर्मी और नंगई से सेवा की गयी है, उससे तो भारत के इतिहास की अतीत की सभी सरकारें शर्मा जायेंगी। मोदी सरकार ने एक नया "कम्पनी राज" यानी अडानी-अम्बानी-टाटा-बिड़ला-वेदान्ता आदि देसी लुटेरों का राज क़ायम कर दिया है। 1857 में अंग्रेज़ों के कम्पनी राज के ख़िलाफ़ देश की मेहनतकश जनता ने बग़ावत की थी। आज देश की मेहनतकश जनता को इस नये "कम्पनी राज" के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करने की आवश्यकता है।

1857 की बग़ावत को याद करने की दूसरी वजह है इस जनविद्रोह द्वारा स्थापित की गयी हिन्दू-मुस्लिम एकता की मिसाल। इस विद्रोह से हमें सीखते हुए यह गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि धर्म का राजनीति से कोई रिश्ता नहीं होना चाहिए। जनता की सही राजनीति का अर्थ है मेहनतकश वर्गों के हितों की सेवा के लिए नीतियों व योजनाओं का निर्माण और उसे लागू करवाने का संघर्ष, चाहे इसके लिए समाज और सत्ता में एक आमूलगामी क्रान्तिकारी परिवर्तन ही क्यों न करना पड़े। धर्म सबका निजी मसला है। हम अलग-अलग धर्मों के होते हुए भी जनता की सही राजनीति पर एक हो सकते हैं और हमें होना ही चाहिए।

भगतसिंह ने अपने लेख 'साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' में हमें यही सन्देश दिया है। हमें समझना होगा कि धन्नासेठों और इनकी बेशर्मी से व तानाशाहाना तरीक़े से सेवा करने वाली फ़ासीवादी मोदी सरकार आज मेहनतकश जनता की बर्बादी के लिए प्रमुख तौर पर ज़िम्मेदार है और इसके विरुद्ध फ़ैसलाकुन संघर्ष आज का सबसे प्रमुख कार्यभार है।

सेठों-व्यापारियों के धन पर चलने वाली किसी भी चुनावी पार्टी से कोई उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसलिए दूरगामी लड़ाई तो मुनाफ़े पर टिकी समूची पूँजीवादी व्यवस्था को बदलने की है। यह तभी हो सकता है जब हम रोज़गार के अधिकार के लिए, महँगाई से आज़ादी के लिए, साम्प्रदायिकता से मुक्ति के लिए एक जुझारू जनान्दोलन खड़ा करें, जो धर्म और जाति के बँटवारों और दीवारों को गिरा दे।

आइए, 1857 के अपने शहीदों से, आज़ादी के लिए लड़ने वाले क्रान्तिकारियों से सीखते हुए जुझारू जनएकजुटता क़ायम करें। ऐसी एकजुटता के सामने हर ताक़त बौनी है। साथी नौरीन ने बताया कि 'हिन्दू-मुस्लिम एकजुटता अभियान' का उद्देश्य देश की सभी मेहनतकश जनता को उनके असली मुद्दों पर एकजुट करना है।

मज़दूर दिवस एवं 1857 के विद्रोह को याद करते हुए पटना में आयोजित किये गये कई कार्यक्रम

मई दिवस के अवसर पर पटना में **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (आरडब्ल्यूपीआई)** द्वारा पटना के दो निम्न मध्यमवर्गीय व मेहनतकश रिहायशी इलाकों में कार्यक्रम आयोजित किये गये। 2 मई को पटना के कौशल नगर इलाके में सांस्कृतिक संध्या एवं जन सभा का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में सांस्कृतिक टीम द्वारा 'हम मेहनतकश जग वालों से जब अपना हिस्सा माँगेंगे' एवं 'इन हाथों को काम नहीं' जैसे गीतों की प्रस्तुति की गयी।

आगे, जन सभा में बात रखते हुए आरडब्लूपीआई के साथी अजित ने लोगों को मई दिवस के इतिहास से परिचित कराया। उन्होंने आगे कहा कि आज देश के कई हिस्सों जैसे पानीपत, गुड़गाँव, फ़रीदाबाद, मानेसर, नोएडा और भटिण्डा आदि शहरों में मज़दूर अपनी जायज़ माँगों के लिए आन्दोलनरत है। लेकिन उनकी माँगों को सुनने के बजाय सरकार ने मालिकों की जमात का पक्ष लेते हुए मज़दूरों के आन्दोलन का दमन किया है। नोएडा और गुरुग्राम में सैकड़ों मज़दूरों के साथ आदित्य आनन्द, रूपेश राय व मनीषा जैसे कई मज़दूर कार्यकर्ताओं, हिमांशु ठाकुर, सृष्टि व आकृति जैसे छात्रों व कलाकारों और यहाँ तक कि सत्यम वर्मा सरीखे वरिष्ठ पत्रकार और सुप्रसिद्ध जनबुद्धिजीवी तक को, अब तक सामने आये तथ्यों के अनुसार, गैर-क़ानूनी तरीक़े से गिरफ़्तार कर लिया गया है। इसके बावजूद, शासक वर्ग मज़दूरों और उनके संघर्षों से बुरी तरह से भयाक्रान्त है और इस भय में अपने दमन के पाटे को और अधिक ज़ोर-शोर से चलाने का प्रयास कर रहा है। लेकिन वह भूल गया है कि जहाँ दमन होता है, वहाँ प्रतिरोध भी होता है। अजित ने आगे कहा कि आज हमें एकजुट होकर फ़ासीवादी सत्ता द्वारा की जा रही दमनात्मक कार्रवाईयों का विरोध करना होगा और पुलिस द्वारा गैर-क़ानूनी तरीक़े से गिरफ़्तार किये गए मज़दूरों, मज़दूर कार्यकर्ताओं और सत्यम वर्मा की रिहाई की माँग करनी होगी। इस कार्यक्रम के दौरान इलाके में रहने वाले लोग बड़ी संख्या में शामिल हुए तथा उनके बीच व्यापक पैमाने पर पर्चा वितरण किया गया। इसके साथ ही उनके सम्पर्क भी जुटाये गये।

इसके अगले दिन पटना के गोसाई टोला इलाके में नुक्कड़ सभाएँ करते हुए व्यापक पैमाने पर पर्चे बाँटे गये। इन नुक्कड़ सभाओं के ज़रिये इलाके के लोगों को न केवल मई दिवस के इतिहास से परिचित कराया गया बल्कि आज के दौर में देश में सत्ता पर काबिज़ फ़ासीवादी हुकूमत द्वारा उठाये जा रहे मज़दूर-विरोधी कदमों पर भी बात की गयी। इलाके के लोगों को नोएडा एवं मानेसर में मज़दूर आन्दोलन पर सरकार के इशारे पर किए गए पुलिसिया दमन के बारे में बताया गया तथा ऐसी दमनात्मक कार्रवाइयों के खिलाफ़ एकजुट होकर इसका विरोध करने की अपील भी की गयी।

3 मई को पटना स्थित राहुल सांकृत्यायन पुस्तकालय में सईद अख़्तर मिर्ज़ा द्वारा निर्देशित 'अल्बर्ट पिंटो को गुस्सा क्यों आता है?' फ़िल्म की स्क्रीनिंग एवं परिचर्चा का आयोजन किया गया। फ़िल्म के प्रदर्शन के बाद फ़िल्म के कथानक (जो 1980 के दशक की शुरुआत में मुम्बई के टेक्सटाइल मिलों के मज़दूरों की हड़ताल के इर्द-गिर्द घूमता है) और आज के दौर में देश में मेहनतकशों के हालात पर बातचीत की गयी। इस फ़िल्म स्क्रीनिंग और परिचर्चा के दौरान पटना के विभिन्न कॉलेजों के छात्र-छात्राएँ एवं आम नागरिक भी शामिल रहे।

5 मई को हण्ड्रेड फ्लावर्स स्टडी ग्रुप द्वारा मई दिवस एवं मज़दूर अधिकार के लिए जारी संघर्ष विषय पर एक ऑनलाइन परिचर्चा का आयोजन किया गया। इस परिचर्चा में मई दिवस की ऐतिहासिक विरासत पर बात की गयी तथा भारत में मज़दूर आन्दोलन के इतिहास पर भी चर्चा की गयी जिसमें स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व के दौर में हुए मज़दूर आन्दोलनों और हड़तालों का ज़िक्र किया गया। वक्ताओं द्वारा इसके बाद आज़ादी के बाद विभिन्न कालखण्डों में बदलते राजनीतिक परिदृश्य में देश में खड़े हो रहे मज़दूर आन्दोलन पर बात की गयी। यह वह समय था, जब मज़दूरों के संघर्षों ने तत्कालीन सरकारों को मेहनतकशों के अधिकारों को सीमित अर्थों में ही सही, पर मानने पर मजबूर किया था। हालाँकि 1990 के दशक में लागू हुए उदारीकरण और निजीकरण की नीतियाँ लागू होने के बाद ठेका प्रथा, दिहाड़ी व कैजुअल श्रम, हायर एण्ड फायर, यूनियन बनाने के कानूनों को निष्प्रभावी बनाने जैसे मज़दूर-विरोधी प्रावधानों को लागू करने में तेज़ी आयी लेकिन 2014 में फ़ासीवादी भाजपा के सत्ता में आने के बाद से मज़दूरों के अधिकारों पर हमले पहले से कहीं ज़्यादा तेज़ हो गये हैं। यहाँ तक किदशकों के संघर्ष के बाद मज़दूरों ने जो श्रम अधिकार हासिल भी किये थे, 2026 में चार लेबर कोड लागू करके उन्हें भी प्रभावत: ख़त्म कर दिया गया है। आज जब महँगाई और सरकार द्वारा थोपी गयी दुर्व्यवस्था से तंग आकर मज़दूर बेहतर वेतन और अन्य जायज़ माँगों के लिए सड़कों पर उतर रहे हैं, तो फ़ासीवादी सरकार के आदेश पर पुलिस द्वारा उनका दमन किया जा रहा है।

इस परिचर्चा के दौरान यह बात भी निकल कर आयी कि ऐसी दमनात्मक कार्रवाइयों को पुरज़ोर विरोध करना होगा और मज़दूरों द्वारा अपने जायज़ हक के लिए किये जा रहे आन्दोलनों के समर्थन में आगे आना होगा क्योंकि यह सिर्फ़ मज़दूर आन्दोलन के दमन तक सीमित मसला नहीं है बल्कि वास्तव में इस देश के नागरिकों के जनवादी अधिकारों पर हमला है।

8 मई को 1857 की विरासत को याद करते हुए पटना के कौशल नगर में नौजवान भारत सभा और दिशा छात्र संगठन की ओर से साम्प्रदायिकता-विरोधी अभियान चलाया गया। इस दौरान नुक्कड़ सभाएँ की गयी एवं व्यापक पैमाने पर पर्चा वितरण किया गया। इन नुक्कड़ सभाओं में नौजवान भारत सभा एवं दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं द्वारा बात रखते हुए कहा गया कि आज देश में मौजूद फासीवादी हुकूमत द्वारा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया जा रहा है। 'हिन्दुत्व' के उन्मादी नारों के तले मेहनतकश जनता की बुनियादी माँगों के लिए उठने वाली आवाज़ को दबाने का प्रयास किया जा रहा है। 'हिन्दू राष्ट्र' के निर्माण के उद्घोष के पीछे देश की प्राकृतिक

(पेज 8 पर जारी)

मज़दूर दिवस एवं 1857 के विद्रोह को याद करते हुए पटना में आयोजित किये गये कई कार्यक्रम

(पेज 7 से आगे)

संसाधनों एवं सम्पदा तथा मेहनतकशों के श्रम की लूट को बढ़ावा दिया जा रहा है। अँग्रेजी औपनिवेशिक शासन के दौरान शासकों ने सम्प्रदायिकता के बीज बोए थे और तमाम धार्मिक कट्टरपंथी और साम्प्रदायिक संगठनों को बढ़ावा दिया था ताकि राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में सक्रिय विभिन्न धाराओं को कमज़ोर किया जा सके। उस वक्त भी अलग-अलग कट्टरपंथी हिन्दू व मुस्लिम संगठनों की सहायता से लोगों को जाति-धर्म के झगड़े में उलझाकर ब्रिटिशों ने भारत में वर्षों तक देश की जनता की शक्ति को कमज़ोर करने का काम किया था। आम मेहनतकश जनता को धार्मिक भावनाओं में बहाकर रखना और दंगों में उनका इस्तेमाल करना ये हमेशा से शासक वर्गों की चाल रही है। आज की तारीख में भारत की जनता को साम्प्रदायिकता की आग में झोंकने का काम फ़ासीवादी मोदी सरकार बख़ूबी कर रही है।

1857 के विद्रोह के दौरान देश का व्यापक जनसमुदाय धर्म-सम्प्रदाय की पहचान से ऊपर उठकर अँग्रेजी औपनिवेशिक शासन के खिलाफ एकताबद्ध होकर लड़ा एवं उसके चूलें हिला दीं। इस संघर्ष में हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों ने ही मिलकर लड़ाई लड़ी, एक-दूसरे के लिए कुर्बानियाँ दीं और अंग्रेज़ी औपनिवेशिक शासक के विरुद्ध एक जुझारू जनएकजुटता क़ायम की।

वर्तमान समय में हमें भी 1857 के विद्रोह की महान विरासत को याद रखते हुए साम्प्रदायिक फ़ासीवादी ताकतों के खिलाफ एकजुट होकर लड़ना होगा। आज आम मेहनतकश लोगों को सरकार की 'फूट डालो और शासन करो' की इस मंशा को पहचान कर इसकी मुख़ालफत करते हुए आज के ज्वलन्त व वास्तविक मुद्दों जैसे सबके लिए समान शिक्षा व्यवस्था, रोज़गार गारण्टी, आदि माँगों पर वर्ग के आधार पर एकजुट होकर संघर्ष करने की ज़रूरत है।

10 मई को पटना में राहुल सांकृत्यायन पुस्तकालय में कार्यक्रमों की इसी श्रृंखला के तहत 'परज़ानिया' फ़िल्म की स्क्रीनिंग एवं परिचर्चा का आयोजन किया गया। फ़िल्म स्क्रीनिंग के उपरान्त आयोजित परिचर्चा में देश में बढ़ती साम्प्रदायिकता के ख़तरों पर चर्चा की गयी, जिसका ज़िक्र फ़िल्म में भी प्रमुखता से मौजूद था। साम्प्रदायिक शक्तियों द्वारा भड़काये जा रहे उन्माद से आम लोगों की ज़िन्दगी बर्बाद होती है, वहीं दूसरी तरफ उन्माद भड़काने वाले नेता सत्ता का सुख भोगते हैं तथा अपने असली मालिकों यानी पूँजीपतियों के लिए पूँजीपरस्त नीतियाँ बनाते हैं। इस परिचर्चा में यह बात भी की गयी कि देश में मौजूद साम्प्रदायिक फ़ासीवाद से लड़ने के लिए 'सर्वधर्म समभाव' के खोखले नारों के बजाय सच्चे सेक्युलरिज़्म के आधार पर एकताबद्ध होने की जरूरत हैं, जिसका अर्थ होता है धर्म को पूर्णत: निजी मसला बनाया जाना और उसे राजनीतिक व सामाजिक जीवन से पूर्णत: अलग कर दिया जाना। इस परिचर्चा में विभिन्न कॉलेजों के छात्र एवं आम नागरिक शामिल हुए।

इसके बाद, 11 मई को '1857 का विद्रोह और आज के दौर में इसकी प्रासंगिकता' विषय पर ऑनलाइन परिचर्चा का आयोजन किया गया। इस परिचर्चा में 1857 के विद्रोह के इतिहास पर बातचीत की गयी। वक्ताओं की ओर से कहा गया कि इस विद्रोह में व्यापक जनसमुदाय धार्मिक पहचान से इतर हटकर एकताबद्ध होकर औपनिवेशिक दासता के खिलाफ लड़ा था। वक्ताओं ने आगे चर्चा में कहा कि आज हमें इसी विरासत को याद करते हुए धर्म व जाति के आधार पर बँटने के बजाय अपने साझा दुश्मन को पहचानने की ज़रूरत है। देश में सत्तासीन साम्प्रदायिक फ़ासीवादी शक्तियाँ सोची-समझी साज़िश के तहत लोगों को उनकी धार्मिक पहचान के आधार पर बाँटने की कोशिश कर रही है। इससे हमें सावधान रहने की जरूरत है। वर्तमान दौर में, फ़ासीवाद से मुक़ाबले के लिए व्यापक जन एकजुटता कायम करनी होगी तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और रोज़गार आदि के मसले पर जन आन्दोलन खड़े कर, इस सत्ता को कठघरे में खड़ा करना होगा। साथ ही, फ़ासीवादी राज्यसत्ता द्वारा आम मेहनतकश जनता पर की जा रही दमनात्मक कार्रवाइयों का क़दम-क़दम पर पुरज़ोर विरोध करना होगा।

मज़दूर दिवस का संकल्प: लड़कर लेंगे सारे हक़! नोएडा और मानेसर में सभी गिरफ्तार मज़दूरों एवं उनके नेताओं व कार्यकर्ताओं को अविलम्ब बिना शर्त रिहा किया जाये!

● बिगुल संवाददाता

1 मई, मज़दूर दिवस के संकल्प को लेकर हरियाणा के कलायत ब्लॉक में मज़दूर-कर्मचारी संगठनों द्वारा साझा कार्यक्रम आयोजित किया गया। मज़दूर दिवस पर आयोजित इस कार्यक्रम में मज़दूर आन्दोलन की चुनौतियों और प्रतिरोध पर एक हॉल मीटिंग की गयी। कार्यक्रम में सर्व कर्मचारी संघ, क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन, आँगनवाड़ी, आशा और मिड-डे मील यूनियनों ने भागीदारी की। **क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन** के साथी अजय ने बताया कि 1 मई मेहनतकश वर्ग का संकल्प दिवस है। इसी दिन शिकागो शहर के शहीद मज़दूरों ने "8 घण्टे काम, 8 घण्टे आराम और 8 घण्टे मनोरंजन" का नारा बुलन्द किया था। इसलिए मई दिवस के शहीदों को याद करने का मक़सद मेहनतकश आबादी के हक़-अधिकारों की लड़ाई को तेज़ और संगठित करना है।

हम देख रहे हैं कि 2026 में मज़दूर आन्दोलन में एक नया उभार दिखाई दे रहा है। नोएडा, गुरुग्राम और मानेसर सहित देश के कई औद्योगिक क्षेत्रों में मज़दूर अपनी नारकीय परिस्थितियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठा रहे हैं। बढ़ती महँगाई, घटते वेतन और असुरक्षित कार्य परिस्थितियों ने उन्हें सड़कों पर उतरने के लिए मजबूर कर दिया है। यह उभार मज़दूर वर्ग की बढ़ती चेतना का संकेत है। चार लेबर कोड जैसे मज़दूर-विरोधी क़ानूनों के बीच 8-10 हज़ार रुपये में 12-16 घण्टे काम करने वाले मज़दूर आज भारी संकट में हैं। एलपीजी और आवश्यक वस्तुओं की बढ़ती क़ीमतों ने उनकी ज़िंदगी को और कठिन बना दिया है।

ऐसे हालात में जब मज़दूर अपने हक़ के लिए खड़े होते हैं, तब सत्ता और पूँजीपति वर्ग का असली चेहरा सामने आता है। नोएडा और मानेसर में मज़दूरों की जायज़ माँगों के समर्थन में खड़े छात्रों, नौजवानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों को भी दमन का सामना करना पड़ रहा है। अब तक आये सबूतों के आधार पर कहा जा सकता है कि जनबुद्धिजीवी, वरिष्ठ पत्रकार, अनुवादक व लेखक सत्यम वर्मा, श्रम अधिकार कार्यकर्ता आदित्य आनन्द व रूपेश राय, छात्र कार्यकर्ता हिमांशु, सृष्टि, आकृति और मज़दूर साथी मनीषा को नोएडा मज़दूर आन्दोलन में फ़र्ज़ी मुक़दमे लगाकर फँसाया जा रहा है। साथ ही, यूपी पुलिस की तानाशाही का आलम यह है कि 1100 मज़दूरों को भी बिना कोर्ट में पेश किए जेलों में भर दिया गया। वहीं मानेसर क्षेत्र में भी इंक़लाबी मज़दूर केंद्र के 6 मज़दूर कार्यकर्ताओं को झूठे मुक़दमों के तहत जेल में डाल दिया गया। मानेसर में भी एफआईआर में बाद में आदित्य आनन्द का नाम डाल दिया गया है। यह दमनकारी रवैया साफ़ दिखाता है कि सत्ता मज़दूरों की आवाज़ दबाना चाहती है। इस सभा से भी सभी वक्ताओं ने मज़दूरों की रिहाई और फ़र्ज़ी मुक़दमे रद्द करने की माँग उठायी गयी। मज़दूरों के समर्थन में **बिगुल मज़दूर दस्ता** के सुनील ने कहा कि भगतसिंह और उनके साथियों का सपना था मेहनतकश आबादी का राज। यानी, जो मज़दूर सुई से लेकर जहाज़ तक का निर्माण करते हैं — फैक्ट्रियों, कारखानों, रेलवे, बसों और अनाज जैसी तमाम चीज़ों का उत्पादन करते हैं — आज वही लोग ज़िन्दगी की बुनियादी पूर्वशर्तों से वंचित हैं। मेहनतकश वर्ग समाज की रीढ़ है, फिर भी वही सबसे अधिक शोषण का शिकार है। इसलिए मई दिवस हमें याद दिलाता है कि इस अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष को और तेज़ करना होगा।

सभा के बाद मज़दूरों ने रैली निकालते हुए नगरपालिका में हड़ताल पर बैठे मज़दूरों का समर्थन किया। हड़ताल स्थल पर मज़दूरों को सम्बोधित करते हुए कहा गया कि आज ज़रूरत इस बात की है कि मज़दूर डर और दमन के सामने झुकें नहीं, बल्कि और मज़बूती से एकजुट हों। यह लड़ाई केवल वेतन बढ़ोत्तरी की नहीं, बल्कि सम्मानजनक जीवन और शोषण के ख़िलाफ़ एक व्यापक संघर्ष है। मई दिवस के शहीदों की विरासत को आगे बढ़ाने के लिए आज ज़रूरी है कि पूरे देश के मज़दूरों और मेहनतकश किसानों को साथ लिया जाए और उनकी एकता को मज़बूत किया जाए। आज हम सभी इंसाफ़पसंद और मेहनतकश लोगों को अपने हक़-अधिकार की लड़ाई के लिए खड़ा होना होगा, क्योंकि वर्तमान सरकार चार लेबर कोड जैसे क़ानूनों के ज़रिये स्थायी मज़दूरों के अधिकारों को भी कमज़ोर करने की तैयारी कर रही है।

साथ ही, गांवों में मनरेगा को लगभग ख़त्म करके 100 दिनों के रोज़गार पर भी असर डाला जा रहा है। मज़दूर आन्दोलन का इतिहास इस बात का गवाह है कि जब-जब मज़दूरों ने अपनी जुझारू एकजुटता कायम की है, तब-तब सरकार और प्रशासन को झुकना पड़ा है। इसलिए मज़दूर आन्दोलन के इस उभार को मज़दूर मुक्ति के व्यापक संघर्ष में बदलना हमारी ज़िम्मेदारी है।

मई दिवस के अवसर पर RWPI द्वारा शाहबाद डेरी, दिल्ली में गली मीटिंग का आयोजन

1 मई यानी अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस के अवसर पर शाहबाद डेरी, दिल्ली मे गली मीटिंग का आयोजन किया गया। इस दौरान मई दिवस की क्रान्तिकारी विरासत और आज के वक़्त में उसकी प्रासंगिकता पर बातचीत की गयी। इसके साथ ही नोएडा व गुड़गाँव में मज़दूरों के आन्दोलन और सरकार द्वारा मज़दूरों और मज़दूर कार्यकर्ताओं के बर्बर दमन पर भी बातचीत की गयी।

सभा में एकत्र लोगों को वक्ताओं द्वारा बताया गया कि 1886 में शिकागो के मज़दूरों ने अपने संघर्ष और क़ुर्बानियों से जिस मशाल को ऊँचा उठाया था, उसे मज़दूरों की अगली पीढ़ियों ने अपना ख़ून देकर जलाये रखा और दुनियाभर के मज़दूरों के अथक संघर्षों के दम पर ही 8 घण्टे काम के दिन का क़ानून बना। इसी प्रकार, मज़दूरों की क़ुर्बानियों और लड़ाइयों के बूते ही उन्होंने अन्य सभी जनवादी श्रम अधिकार क़ानूनी तौर पर हासिल किये। लेकिन पिछले पाँच-छह दशकों में, यानी नवउदारवाद के दौर में, मज़दूरों के अधिकार दुनिया के अधिकांश देशों में पूँजीवादी सरकारों ने एक-एक करके छीने हैं। प्रभावत: यही काम फ़ासीवादी मोदी सरकार के नये लेबर कोड भी करते हैं।

'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम' के नारे के साथ एक इन्सानी ज़िन्दगी के हक़ के वास्ते शिकागो के मज़दूरों ने एक शानदार संघर्ष लड़ा जिसमें एल्बर्ट पार्सन्स, ऑगस्ट स्पाइस, एडोल्फ़ फ़िशर व जॉर्ज एंजेल जैसे हमारे वीर मज़दूर साथी शहीद हुए थे। इनके संघर्ष के बूते दुनियाभर में आठ घण्टे के काम के दिन के हक़ को पूँजीपति वर्ग को अन्तत: स्वीकार करना पड़ा। लेकिन आज की सच्चाई यह है कि 2026 में कई मायनों में मज़दूरों के हालात 1886 से भी बदतर हो गये हैं। मज़दूरों की ज़िन्दगी आज भयावह होती जा रही है।

दो वक़्त की रोटी कमाने के लिए 12-12 घण्टे खटना पड़ता है। पूरी ज़िन्दगी मालिकों के शोषण के पहिए में गोल-गोल घूमती रहती है।

मई दिवस के हमारे शहीदों ने अपना ख़ून बहाकर 'आठ घण्टे काम, आठ घण्टे मनोरंजन, आठ घण्टे आराम' का अधिकार हासिल किया था। लेकिन आज मज़दूर वर्ग के इस अधिकार को फ़ासीवादी मोदी सरकार चार लेबर कोड के ज़रिये ख़त्म कर रही है। जिस तरह से शिकागो के हे मार्केट स्क्वायर में मज़दूरों की सभा में पुलिस और मालिकों के गुण्डों ने ही बम फेंककर सारा इल्ज़ाम मज़दूरों और मज़दूर नेताओं पर डाल दिया था, ठीक उसी पद्धति पर अमल उत्तर प्रदेश की योगी सरकार और उसकी पुलिस ने मज़दूर आन्दोलन व उसके एक्टिविस्टों के साथ किया है। नोएडा में तीन दिन से मज़दूर शान्तिपूर्वक हड़ताल कर रहे थे। मालिक और सरकार तरह-तरह से इस हड़ताल को तोड़ने की कोशिश कर रहे थे।

लेकिन हर बार उनके हाथ नाकामयाबी ही लग रही थी। अब तमाम अख़बारी रपटों व सबूतों के सामने आने से साफ़ प्रतीत हो रहा है कि मज़दूरों की शान्तिपूर्वक हड़ताल से बौखलाकर मालिकों और सरकार ने आन्दोलन का दमन किया। ऐसी ख़बरें व रपटें सामने आ चुकी हैं जिन्होंने नोएडा में 13 अप्रैल को हुई हिंसा में उत्तर प्रदेश पुलिस की भूमिका पर गहरा सन्देह पैदा कर दिया है। दूसरी ओर, बेगुनाह सामाजिक कार्यकर्ताओं पर इस हिंसा का इल्ज़ाम डाल उन्हें जेलों में डाल दिया गया है। पानीपत से लेकर गुड़गाँव-मानेसर और नोएडा हो या देश के अन्य हिस्सों में हुई हड़तालें हों, फ़ासीवादी मोदी सरकार जायज़ हक़ों के लिए उठ रही मज़दूरों कि आवाज़ का बर्बर दमन कर रही है। लेकिन सवाल यह है कि क्या इससे मज़दूर डर जायेंगे? क्या मज़दूर अपने हक़ों की आवाज़ उठाना बन्द कर देंगे? जवाब है बिल्कुल भी नहीं। न इतिहास में ऐसा हुआ था, न वर्तमान में ऐसा हुआ है और न भविष्य में ऐसा होगा! जब-जब मज़दूरों का दमन होगा तब-तब मज़दूर वर्ग दोगुनी ताक़त और एकजुटता से अपनी माँगों को लेकर अपनी आवाज़ बुलन्द करेगा। हमारे पास मई दिवस कि शानदार क्रान्तिकारी विरासत है जिसकी प्रेरणा तमाम बर्बर दमन के बावजूद हमारे हौसलों को बुलन्द रखने के लिए काफ़ी है।

1 मई अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर दिवस की क्रान्तिकारी विरासत ज़िन्दाबाद!

● बिगुल संवाददाता

1 मई को 140 वें मज़दूर दिवस के अवसर पर भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) और बिगुल मज़दूर दस्ता के द्वारा रोहतक शहर के विभिन्न लेबर चौकों पर कार्यक्रम किये गये। इस अवसर पर मज़दूर साथियों को मई दिवस की ऐतिहासिक विरासत से परिचित कराया गया।

सभाओं में बताया गया कि मई दिवस का इतिहास हमारे लिए ख़ास मायने रखता है। इस दुनिया में एक तरफ़ कमेरों का वर्ग है जिसकी मेहनत के दम पर दुनिया की सारी चमक-दमक क़ायम है। लेकिन मेहनतकशों की ज़िन्दगी तबाह-बर्बाद है। बारह-बारह घण्टे काम करके भी गुजारा नहीं, बच्चों के लिए अच्छे दवा-इलाज़, शिक्षा-रोज़गार तक का प्रबन्ध नहीं हो पाता। दूसरी तरफ़ लुटेरों का वर्ग है जो बिना कुछ किये भी केवल शोषण और लूट के दम पर दुनिया की दौलत पर कब्ज़ा करके बैठा है। सबकुछ पैदा तो कमेरा वर्ग करता है लेकिन फ़िर भी जीवन की बुनियादी ज़रूरतों तक से महरूम रहकर शोषण की चक्की में पिसता रहता है।

इसी अन्याय और शोषण के प्रतिरोध का प्रतीक है मज़दूर दिवस! इस दिन हमारे पुरखों ने अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी और आठ घण्टे के कार्यदिवस की माँग के साथ अपने हक़-अधिकारों का बिगुल फूँका था।

मई दिवस का सच्चा सन्देश यही है कि हम अपने शानदार अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की दिशा का सन्धान करें। मई दिवस के महान शहीदों को हमारी यही सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

लेबर चौकों पर आयोजित सभाओं के दौरान नोएडा-मानेसर में हुई हालिया हड़तालों को दबाने और निर्दोष ट्रेड यूनियन एक्टिविस्टों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और बुद्धिजीवियों को तंग और गिरफ्तार करने के पुलिस-प्रशासन के रवैये का विरोध किया गया। मज़दूर साथियों ने कहा कि न्याय के लिए आवाज़ उठाना अपराध नहीं है और सभी एक्टिविस्टों को तत्काल प्रभाव से रिहा किया जाना चाहिए। सभाओं के अन्त में नारे लगाकर नोएडा-मानेसर के श्रमिक संघर्षों के प्रति एकजुटता व्यक्त की गयी।

नोएडा के मज़दूर आन्दोलन और गिरफ्तार सामाजिक कार्यकर्ताओं व बुद्धिजीवियों के बारे में उत्तर प्रदेश पुलिस की विचित्र 'सत्य कथाएँ' और वास्तविक सच्चाई

● वृषाली

देश में शायद ही कोई ऐसा हो जो यह न जानता हो कि नोएडा के मज़दूर आन्दोलन के दौरान सैंकड़ों मज़दूरों और 7 सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों, बुद्धिजीवियों और छात्र कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया है। इन पर शुरू में उत्तर प्रदेश पुलिस और गोदी मीडिया ने "पाकिस्तानी एजेण्ट" होने का आरोप लगा दिया! इस पर जनता के बड़े हिस्से की हँसी छूट गयी। इसके बाद इनको "नक्सली" बताने का प्रयास भी किया गया। इस पर भी जनता अपनी हँसी मुश्किल से ही रोक पायी, पर कुछ लोग फिर फक से हँस दिये! लेकिन ज्यादा बड़ा चुटकुला सुनने का मन हो तो आप उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा अब तक गिरफ्तार सामाजिक कार्यकर्ताओं की ज़मानत का विरोध करने वाले लिखित आवेदन और रिमाण्ड दस्तावेज़ देख सकते हैं। हम आपको विस्तार से उत्तर प्रदेश पुलिस के ये चुटकुले सुनाते हैं। ये चुटकुले उत्तर प्रदेश पुलिस के आला अधिकारियों और उनके तहत काम करने वाले पुलिसकर्मियों की मानसिक स्थिति और क्षमताओं के बारे में भी काफ़ी-कुछ बताते हैं। आइये, अब तक उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा अदालत में पेश कुछ दस्तावेज़ों की पड़ताल करें। पुलिस की भाषा पढ़कर हँसी आ सकती है क्योंकि एक दसवीं पास लड़का भी इससे बेहतर भाषा लिख सकता है।

दिनांक 27 अप्रैल 2026 को न्यायालय अपर सिविल जज एसीजेएम 03, गौतमबुद्धनगर द्वारा पारित रिमाण्ड ऑर्डर में पुलिस द्वारा प्रस्तुत पक्ष में यह कहा गया : ***"हिमांशु ठाकुर उपरोक्त द्वारा सीडी पर्चा संख्या 11 में अपने बयान में यह कहा गया कि 'नोएडा में मजदूरों के आन्दोलन की जानकारी होने पर पेटिका के माध्यम से मैंने चन्दा भी लिया था तथा मैंने आन्दोलन में मौजूद मजदूरों/श्रमिकों को मैं दिनांक 11-4-2026 को तथा दिनांक 13-4-2026 को नोएडा में गया था तथा सभी को अपनी माँगें पूरी कराने के लिए हिंसात्मक कार्य करने के लिए उकसाया था। नोएडा में जो हिंसात्मक घटना हुई थी उसमें मैं शामिल था जो पुराने समाचार-पत्र मेरे कमरे से मिले है वह समाचार-पत्र में जो भी आन्दोलन होता है उसे मैं मौजूद लोगों को बाँट देता है जिससे लोगो के अन्दर जोश आता है। जो बैनर मुड़ासे मिले है वह मैंने स्वयं बनाए है तथा जो पम्पलेट मिले है वह भी मैंने दिनांक 11 एवं 13 अप्रैल को मजदूरों के आन्दोलन में बाँटे थे। हिमांश उपरोक्त के कमरे से बरामद सामग्री तथा की गयी पूछताछ के दौरान दिनांक 11-4-2026 एवं दिनांक 13-4-2026 को हुई मजदूरों के आन्दोलन कि हिंसक घटना में शामिल होना स्वीकार किया गया है और पूछताछ करने पर कुछ नहीं बताया और यह कहकर चुप हो गया।..."***

अब इस दस्तावेज़ का विकूटीकरण करना पहला कार्य है क्योंकि भाषा समझ से परे है! लेकिन पर्याप्त विकूटीकरण के बाद पाठक समझ सकते हैं कि हिमांशु ठाकुर को किस प्रकार पुलिस झूठे आरोपों में फँसाने के लिए एक मनगढ़न्त कहानी बना रही है। पहली बात यह है कि हिमांशु ठाकुर ने अपने वक़ीलों को जेल में मुलाकात पर साफ़ बताया कि उसने कोई इक़बालिया बयान दिया ही नहीं है। इसके अलावा, जो बातें उपरोक्त दस्तावेज़ में लिखी हैं उसमें से कई कार्रवाइयों में (अगर वह अभियुक्त ने वाक़ई की हैं!) कुछ भी ग़ैर-क़ानूनी या असंवैधानिक नहीं है। पर्चा बाँटना, अख़बार बाँटना या संघर्ष के लिए सहयोग एकत्र करना हर जन संघर्ष में सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा की जाने वाली आम क़ानूनी कार्रवाइयाँ हैं। जहाँ तक 11 अप्रैल का प्रश्न है, तो उस दिन कोई हिंसात्मक घटना घटी ही नहीं थी। और जहाँ तक 13 अप्रैल का प्रश्न है, तो उस दिन मदरसन कम्पनी के बाहर हिंसात्मक घटना घटी थी लेकिन पुलिस ने इस बात का कोई प्रमाण पेश नहीं किया है कि हिमांशु ठाकुर वहाँ मौजूद था, न तो कोई कॉल डिटेल रिकॉर्ड पेश किये गये हैं और न ही कोई मोबाइल लोकेशन पेश किये गये हैं। इसके अलावा हिंसा की वारदात की जगह का कोई ऐसा वीडियो या तस्वीरें भी पेश नहीं की गयी है जिनमें हिमांशु ठाकुर मौजूद हो और हिंसा कर रहा हो या हिंसा के लिए लोगों को उकसा रहा हो। वास्तव में, 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के समक्ष हुई हिंसा की शुरुआत का अगर कोई सीसीटीवी फुटेज पुलिस पेश करे, तो सच्चाई साफ़ हो जायेगी। सच्चाई यह है कि 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के बाहर उन सात सामाजिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों में से कोई भी मौजूद नहीं था, जिन पर पुलिस हिंसा भड़काने का आरोप लगा रही है। हाँ, उत्तर प्रदेश पुलिस भारी संख्या में वहाँ ज़रूर मौजूद थी! कई चश्मदीद मज़दूरों ने कैमरे पर बताया है कि 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी में हिंसा की शुरुआत की वजह पुलिस की कार्रवाई थी क्योंकि पुलिस कम्पनी से नाइट शिफ़्ट पूरी करके निकल रहे मज़दूरों को कम्पनी के भीतर रहने के लिए बाध्य कर रही थी और कह रही थी कि वे लोग बाहर नहीं जा सकते क्योंकि वे बाहर जाकर प्रदर्शन करेंगे। जब मज़दूरों ने इस बात को मानने से इंकार किया तो पुलिस ने महिला मज़दूरों पर लाठी-चार्ज शुरू कर दिया जिसके बाद हिंसा भड़की। इन सबूतों की पुलिस कोई छानबीन नहीं कर रही है। क्यों?

इसी रिमाण्ड ऑर्डर के कुछ अन्य हिस्सों पर विचार करते हैं : ***"तथा अभियुक्त सत्यम वर्मा उपरोक्त द्वारा सीडी पर्चा संख्या 11 में अपने बयान में यह कहा गया है कि '...8 अप्रैल 2026 से नोएडा में शुरू हुए मजदूर आन्दोलन में आदित्य आनन्द द्वारा बनाये टेलीग्राम पर बिगुल मीडिया यपू पर ही सारी यात हुई थी। नोएडा मजदूर आन्दोलन पर अपने संगठन की पकड बनाने के लिए कुछ लोगो को नामित कर नोएडा भेजा गया था। जहाँ पर रुपेश राय व आदित्य आनन्द द्वारा अपने भडकाऊ भाषणों से मौजूद भीड को आन्दोलन उग्र रूप से चलाने चलाने हेतु उकसाया गया था। जिसमे रूपेश राय के कुछ स्थानीय साथी भी सम्मिलित थे। जिन्होने रूपेश राय के गिरफ्तार हे के वाद प्रशासन पर दबाव बनाने हेतु भीड इकट्ठा कर थाने पर पहुंचने व आंदोलन उप करने हेतु उकसाया था। जिसके फलस्वल्प 13 अप्रैल में आंदोलनकारी मजदूरो द्वारा नोएडा में हिंसक रूप से तोड-फोड व आगजनी की गयी थी और मेरे द्वारा भी कुछ मैसेज व खबरो की ड्राफ्टिंग कर उन्हे भडकाऊ रूप से प्रचारित किया गया था। यह कार्य हम लोग योजनावद्ध तरीके से पड़यंत्र बनाकर कर रहे थे। हमारा उद्देश्य नोएडा में औद्योगिक गतिविधियों को ठप करना था आदित्य आनन्द दिनाक 13-4-2026 को नोएडा में हुये हिंसक प्रदर्शन के दौरान फेज 2 नोएडा में मौजूद था एवं घटना के बाद यहां से चला गया था और पूछने पर कुछ नहीं बताया और यह कहकर चुप हो गया..."***

यहाँ भी हास्यास्पद भाषा का विकूटीकरण स्वयं करें। हम केवल इन दावों की पड़ताल करेंगे। पुलिसिया दावे के अनुसार 13 अप्रैल को सत्यम वर्मा नोएडा में हिंसक घटना के बाद मैसेज व ख़बरों की ड्राफ्टिंग करके प्रचारित कर रहे थे। लेकिन 13 अप्रैल को तो सत्यम वर्मा पूरे दिन लखनऊ में हसनगंज थाना में नोएडा व लखनऊ पुलिस की हिरासत में थे! उनका फ़ोन पुलिस ज़ब्त कर चुकी थी, हालाँकि पुलिस के पास ऐसा करने के लिए कोई क़ानूनी नोटिस या पूर्वसूचना या वारण्ट नहीं था! ऐसे में, अगर सत्यम वर्मा के फ़ोन से कोई मैसेज या ख़बर गयी जो भड़काऊ थी, तो वह तो उत्तर प्रदेश पुलिस ने ही की होगी, क्योंकि सत्यम वर्मा को उनका फ़ोन 13 अप्रैल की रात दिया गया जब एक अन्य नागरिक की मौजूदगी में उन्हें रिहा करके सुपुर्दगी दस्तावेज़ पर उनके हस्ताक्षर करवाये गये! 13 अप्रैल को सत्यम वर्मा मदरसन कम्पनी के बाहर भी नहीं हो सकते थे, क्योंकि वे हसनगंज थाना, लखनऊ में पुलिस की हिरासत में अन्य दो साथियों के साथ मौजूद थे! सच तो यह है कि सत्यम वर्मा पिछले 12 वर्षों में कभी नोएडा गये ही नहीं हैं! अगर पुलिस की बात सच है तो सत्यम वर्मा के पास ज़रूर कोई जादुई या दैवीय शक्ति है जिसके ज़रिये वे एक साथ दो स्थानों पर मौजूद हो सकते हैं! इसके अलावा, सत्यम वर्मा ने भी अपने क़ानूनी प्रतिनिधि को जेल में मुलाक़ात के दौरान बताया है कि उन्होंने ऐसा कोई बयान पुलिस को नहीं दिया है। हिमांशु ठाकुर, आदित्य आनन्द और सत्यम वर्मा, किसी ने भी ऐसा कोई इक़बालिया बयान पुलिस को नहीं दिया है और पुलिस के इन दावों को रद्द करने के लिए उन्होंने अदालत में इन झूठे इक़बालिया बयानों को रद्द करने का आवेदन भी मई के पहले सप्ताह में दे दिया है।

इसी रिमाण्ड ऑर्डर में आगे लिखा है : ***"तथा अभियुक्त आदित्य आनन्द उपरोक्त द्वारा सीडी पर्चा संख्या 11 में अपने बयान में कहा गया है कि...हमने नोएडा में मजदूरों की आवाज प्रदर्शन भी हमारे ही बनाई गई योजना पर हये थे मेरे साथी रूपेश राय, हिमांश ठाकूर, सत्यम बनकर हिंसक प्रदर्शन दिनाक 10/11/12-04-2026 को किया था। इसके बाद भी हये हिसक वर्मा, आकृति श्रष्टि, मनिया, प्रियमवदा आदि है हम सब समय समय पर मीटिंगे करके वाट्सएप गुपो के माध्यम से श्रमिकों एवं पीडितो की गेटरिंग करते है और कुछ अपने आटमी घुसाकर उनका माइड मैकअप करके आगजनी व तोडफोड करके हिंसक प्रदर्शन करते है हम विभित्र संगठनों जैसे काम करते है तथा अपनी सक्रिय भूमिका निभाते है। इसके बाद चुप हो गया बार-बार पूछने पर भी RWPI दिशा छात्र संगठन नवजात भारत सभा, मजदूर बिगुल दस्ता आदि संगठनों के लिए कुछ नहीं बोला..."***

उत्तर प्रदेश पुलिस की हिन्दी भाषा पढ़कर हँसी आ रही हो तो उसे रोकें और हमारी बातों पर ग़ौर करें! पहली बात यह कि आदित्य आनन्द ने अपने क़ानूनी प्रतिनिधियों से जेल में मुलाक़ात के दौरान ऐसा कोई भी बयान देने से साफ़ इंकार किया है। शायद इसीलिए दो बार उन्हें पुलिस कस्टडी में यातना दी गयी। इसके बावजूद उन्होंने कोई इक़बालिया बयान नहीं दिया क्योंकि इक़बाल करने के लिए कोई जुर्म है ही नहीं। मजिस्ट्रेट के समक्ष सुनवाई में पुलिसिया हिरासती हिंसा से चोटिल आदित्य आनन्द ने पुलिस द्वारा अपने ऊपर की गयी हिंसा की शिक़ायत की तो मजिस्ट्रेट ने पुलिस को फटकारा और इस वाक़ये पर डीसीपी जाँच बिठा दी। साथ ही, सुप्रीम कोर्ट में पुलिस हिरासत में यातना पर डाली गयी याचिका के फलस्वरूप 8 मई को सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश पुलिस व सरकार के आला अधिकारियों को नोटिस भेजी है। हिंसा करने वालों में आई.ओ. हरेन्दर राणा प्रमुख था। अब पुलिस अपनी जाँच स्वयं करेगी, तो उसका क्या नतीजा निकलेगा यह सभी को पता है। इसके अलावा, आदित्य आनन्द भी अपने वक़ील के

(पेज 19 पर जारी)

गोदी मीडिया ने नोएडा और मानेसर के मज़दूर आन्दोलन को ग़ैर-क़ानूनी बनाकर पेश करने के लिए कैसी घृणित चालें चलीं?

(पेज 1 से आगे)

हक़ों के बारे में जागरूक बनाना कोई असंवैधानिक हरक़त है? क्या मज़दूरों के लिए बिजली कनेक्शन का हक़ माँगना नाजायज़ है? क्या छात्रों-युवाओं को देश की मेहनतकश जनता के संघर्षों का समर्थन करने के लिए कहना ग़ैर-क़ानूनी है? क्या यूनियन बनाना असंवैधानिक है?

अगर आप भारत का संविधान और मोदी सरकार द्वारा पारित फ़ासीवादी भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता को भी पढ़ें तो उपरोक्त कार्रवाइयों में से कोई भी असंवैधानिक या ग़ैर-क़ानूनी नहीं है। भारत के हर नागरिक को उपरोक्त कार्रवाइयों में शामिल होने का पूरा अधिकार है। *संविधान की धारा 19(1) (सी) के अनुसार देश के हर नागरिक को संघ, संगठन या यूनियन बनाने का अधिकार प्राप्त है। धारा 19 शान्तिपूर्ण रूप से एकत्र होने व प्रदर्शन करने का पूरा अधिकार देती है। इसी धारा के तहत, हर नागरिक को अभिव्यक्ति का पूरा अधिकार है, जिसके तहत वे किसी भी आन्दोलन, संघर्ष या हड़ताल का समर्थन कर सकते हैं, उसके पक्ष में लिख सकते हैं और बोल सकते हैं। धारा 14 के अनुसार भारत का हर नागरिक चाहे वह मालिक हो या मज़दूर, देश के क़ानून के समक्ष समान माना जायेगा।* कम-से-कम काग़ज़ों पर लिखा तो यही है!

यानी आन्दोलन करने, हड़ताल करने, संघर्ष करने, शान्तिपूर्ण रूप से एकत्र होने, अपनी यूनियन व संगठन बनाने, किसी भी नागरिक को उसके या भारत के अन्य नागरिकों के अधिकारों बारे में अवगत कराने में कुछ भी ग़ैर-क़ानूनी या असंवैधानिक नहीं है। देश का कोई भी नागरिक देश के किसी भी हिस्से में जा सकता है और उपरोक्त कार्रवाइयाँ कर सकता है और वह पूरी तरह से क़ानून के दायरे में होगा।

इन सारी क़ानूनी कार्रवाइयों को गोदी मीडिया के बाज़ारू दलाल अपनी घिनौनी चीख़-चिल्लाहट में और घृणास्पद सनसनीख़ेज़ आवाज़ में ऐसे पेश कर रहे हैं मानो आदित्य, रूपेश, हिमांशु, सृष्टि, आकृति, मनीषा और सत्यम वर्मा ने मज़दूरों के आन्दोलन व हड़ताल में शिरक़त करके या दूर बैठे ऑनलाइन उसका समर्थन करके कोई अपराध किया हो! यह सारा काम योगी सरकार और उसकी पुलिस की शह पर किया जा रहा था। इसी के साथ इन सामाजिक कार्यकर्ताओं के बारे में 11 अप्रैल से ही गोदी मीडिया ने (ज़ाहिरा तौर पर उत्तर प्रदेश पुलिस के निर्देशों पर) तरह-तरह के झूठे प्रचार और अफ़वाहें फैलायीं। पहले कहा गया कि इन कार्यकर्ताओं का रिश्ता पाकिस्तान से है! अब चूँकि सारी जनता जान चुकी है कि भाजपाई और उनके ऑनलाइन अफ़वाहें फैलाने वाले आईटी सेल के दल्ले हर उस व्यक्ति या संगठन को पाकिस्तानी एजेण्ट घोषित कर देते हैं जो पूँजीपति वर्ग और उसकी चहेती फ़ासीवादी पार्टी भाजपा पर सवाल उठाते हैं, इसलिए इस प्रचार का कोई असर नहीं हुआ। फिर 2-3 दिनों के भीतर उत्तर प्रदेश पुलिस की शह पर गोदी मीडिया में यह रपटें आने लगीं कि ये कार्यकर्ता नक्सली हैं! लेकिन इन कार्यकर्ताओं के सार्वजनिक लेखन और वक्तृता में बार-बार भाकपा (माओवादी) की "वामपंथी" दुस्साहसवादी लाइन की आलोचनाएँ आ चुकी थीं और उनके ऊपर ऐसे झूठे आरोप टिकेंगे नहीं, और जनता भी समझने लगी है कि जो भी पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण या दमन का विरोध करे, उसे "आतंकवादी", "नक्सलवादी" आदि क़रार दे दिया जाता है, इसलिए यह दुष्प्रचार और अफ़वाह भी क़ामयाब नहीं हुए। आप अगर गोदी मीडिया के न्यूज़ चैनलों के यूट्यूब चैनलों पर जाएँ तो 11 अप्रैल के बाद से उनके द्वारा फैलायी गयी इन अफ़वाहों और दुष्प्रचार से भरी उनके वीडियोज़ पर 75 फ़ीसदी से ज़्यादा लोगों ने नकारात्मक टिप्पणियाँ की हैं और गोदी मीडिया के दुष्प्रचार को मानने के बजाय ख़ुद ही उसका पर्दाफ़ाश कर दिया है। शासक वर्ग के भाड़े के टट्टू भी दिन भर बैठकर यह जाँचते रहते हैं कि इस प्रकार की अफ़वाहें और प्रचार जनता में सफल हो रहे हैं या नहीं। उन्हें जल्द ही यह रिपोर्ट मिलने लगी कि इन अफ़वाहों और दुष्प्रचार का उल्टा असर हो रहा है और योगी सरकार व गोदी मीडिया इससे और भी अलोकप्रिय हो रहे हैं।

इसके बाद, उत्तर प्रदेश पुलिस की ही शह पर ऐसी बातें गोदी मीडिया में आने लगीं कि ये कार्यकर्ता कई राज्यों में आपसी तालमेल से काम करते हैं, इनका एक देशव्यापी नेटवर्क है, वगैरह। लेकिन अगर ऐसा है तो इसमें कुछ भी ग़ैर-क़ानूनी नहीं है! भाजपा और आरएसएस और अन्य सभी पूँजीवादी चुनावी पार्टियों का भी पूरे देश में ही नेटवर्क है! तो क्या इस वजह से उन पर बैन लगा दिया जाना चाहिए? इसके बाद पुलिस और गोदी मीडिया ने यह कहना शुरू किया कि ये कार्यकर्ता एक साथ कई संगठनों के सदस्य कैसे हो सकते हैं? लेकिन फिर सवाल यह भी उठता है कि अगर ऐसा है तो इसमें भी असंवैधानिक या ग़ैर-क़ानूनी क्या है? क्या नरेन्द्र मोदी एक साथ भाजपा और आर.एस.एस. के सदस्य नहीं हैं? क्या अरुण जेटली एक साथ ही अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् और भाजपा के सदस्य नहीं थे? क्या गौरव खारी और नकुल भारद्वाज जैसे भाजपा नेता एक साथ ही विद्यार्थी परिषद, भाजयुमो, भाजपा व आर.एस.एस. के मेम्बर नहीं हैं?

यह तो किसी भी नागरिक का नैसर्गिक अधिकार है कि वह एक साथ कई संगठनों का हिस्सा हो सकता है क्योंकि हर नागरिक की कई पहचानें होती हैं: वह एक युवा हो सकता है, साथ में उसकी एक जेण्डर पहचान, भाषाई पहचान, पेशागत पहचान, क्षेत्रीय पहचान, आदि हो सकती है और इन पहचानों के आधार पर वह कई मंचों, जनसंगठनों या पार्टियों का हिस्सा हो सकता है और संविधान और क़ानून की कोई भी धारा या प्रावधान उसके इस अधिकार को नहीं छीनती। तो फिर उत्तर प्रदेश पुलिस और गोदी मीडिया इस पर सवाल कैसे उठा सकता है? यह मज़ाकिया दुष्प्रचार कर नोएडा आन्दोलन के तहत गिरफ़्तार कार्यकर्ताओं के विरुद्ध जन राय निर्माण करने का उत्तर प्रदेश सरकार, पुलिस व गोदी मीडिया का मंसूबा भी धरा का धरा रह गया।

दूसरी ओर, देश भर में प्रगतिशील व जनवादी शक्तियों के प्रयासों और गिरफ़्तार साथियों की रिहाई के लिए जारी अभियान के कारण वैकल्पिक मीडिया में, जो अब जनता के ज़्यादा बड़े हिस्से में देखा जाता है, यह ख़बरें आने लगीं कि नोएडा में हिंसा भड़काने में उत्तर प्रदेश पुलिस की सन्देहास्पद भूमिका है क्योंकि उससे जुड़े लोग मज़दूरों के व्हाट्सऐप ग्रुपों में भड़काऊ सामग्री डाल रहे थे। और साथ ही जो सामाजिक कार्यकर्ता गिरफ़्तार किये गये हैं, उन पर लगे आरोपों का कोई भी ठोस प्रमाण अब तक पुलिस ने कहीं भी पेश नहीं किया है। अब तक सामने आये प्रमाणों और मीडिया रिपोर्टों के आधार पर यह प्रश्न उठने लगे कि नोएडा पुलिस की नोएडा में भड़की हिंसा में क्या भूमिका थी? कहीं ऐसा तो नहीं कि मज़दूर आन्दोलन के दमन को वैध ठहराने के लिए उसमें हिंसा भड़कायी गयी? इन सवालों का जवाब तो किसी उच्च स्तरीय निष्पक्ष जाँच से ही मिल सकता है। चूँकि यह बात जनता के व्यापक हिस्से के सामने आने लगी तो नोएडा प्रकरण की जाँच के लिए उत्तर प्रदेश प्रशासन ने एक मजिस्ट्रेट जाँच बिठा दी। लेकिन यह भी एक पुलिसिया स्तर की ही जाँच है और आम तौर पर ऐसी जाँचों से ज़्यादा उम्मीद नहीं की जा सकती। यह उत्तर प्रदेश सरकार व पुलिस द्वारा अपना चेहरा बचाने के लिए की जाने वाली क़वायद ज़्यादा प्रतीत होती है। नैरेटिव पलट गया है और मज़दूरों और जनता के बीच सच्चाइयाँ साफ़ तौर पर जाने लगी हैं।

फिर भी, नोएडा और मानेसर में मज़दूर आन्दोलनों का पूरा प्रकरण दिखलाता है कि इस समय देश में अगर कोई सबसे बड़ा देशद्रोही है तो वह गोदी मीडिया है। सत्ता पर प्रश्न करने के बजाय वह सत्ता की गोद में बैठा हुआ है, फ़ासीवादी और साम्प्रदायिक प्रचार में सत्ता में बैठी साम्प्रदायिक फ़ासीवादी शक्तियों का वह पूरा साथ देता है और कई बार जोश में उससे भी ज़्यादा साम्प्रदायिक हो जाता है, जितना यह सत्ता चाहती है! इसकी यह अश्लीलता और नग्नता अब इस हद तक जनता के सामने आ चुकी है कि जनता का एक अच्छा-ख़ासा हिस्सा गोदी मीडिया के चैनल देखना छोड़ चुका है या फिर कभी किसी सस्ते क़िस्म का मनोरंजन करने का मन हो, तो ही देखता है! गोदी मीडिया की कोई विश्वस्नीयता नहीं है और जनता के बड़े हिस्से का उस पर से भरोसा पूरी तरह से उठ चुका है।

नोएडा व मानेसर के मज़दूर आन्दोलनों को आपराधिक व ग़ैर-क़ानूनी बनाने का गोदी मीडिया ने पुरज़ोर प्रयास किया। उसके कार्यकर्ताओं पर तरह-तरह के लांछन लगाकर उन्हें कलंकित करने की हर सम्भव कोशिश इस दलाल मीडिया ने की। लेकिन जनता के बीच इसका उल्टा असर हुआ। जनता के सामने यह पहले से भी ज़्यादा साफ़ हो गया कि सत्यम, रूपेश, आदित्य, हिमांशु, सृष्टि, आकृति और मनीषा का गुनाह सिर्फ़ इतना था कि उन्होंने जनता का पक्ष चुना, कि उन्होंने न्याय का पक्ष चुना और इसी की सज़ा योगी सरकार और उसकी पुलिस उन्हें दे रही है। यही वजह है कि 11 अप्रैल के बाद दो सप्ताह के भीतर ही गोदी मीडिया नोएडा मज़दूर आन्दोलन और उसके गिरफ़्तार मज़दूर व सामाजिक कार्यकर्ताओं के मसले पर चुप्पी साध गया है। अगर देश में कोई निष्पक्ष न्यायपालिका है तो उसे समूचे मुख्यधारा मीडिया द्वारा किये जा रहे दुष्प्रचार, अफ़वाहसाज़ी, साम्प्रदायिक उन्माद के प्रचार, फ़ेक न्यूज़ फैलाने की घटिया हरक़तों पर स्वयं संज्ञान लेना चाहिए और ऐसे चैनलों व समाचार प्रतिष्ठानों के प्रबन्धन और दोषी पत्तलकारों पर कड़ी से कड़ी कार्रवाई करनी चाहिए। मतलब, होना तो यही चाहिए। बाक़ी देश के मौजूदा हालात आप सभी को पता हैं।

हिन्दू-मुसलमान एकता को बुलन्द कर 'नये कम्पनी राज' के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ!!

(पेज 16 से आगे)

एकजुटता को असल मुद्दों पर क़ायम होने से रोका है। जब इस एक 'नये कम्पनी राज' में इस मायने में अंग्रेज़ों के वारिस यानी भाजपा-आरएसएस के लोग 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपना रहे हैं तो हमें भी 1857 के अपने पुरखों से सीखना होगा। आज के नये 'कम्पनी राज' और 'फूट डालो राज करो' की नीति के नये पैरोकार यानी साम्प्रदायिक फ़ासीवादियों से संघर्ष करने के लिए हमें 1857 के शहीदों की स्मृति से संकल्प लेते हुए संघर्ष करना होगा।

इस सन्दर्भ में हमारे लिए सबसे अहम सबक़ यह है कि धर्म हर किसी का व्यक्तिगत मसला है। इसका राजनीति और सामाजिक जीवन से कोई भी रिश्ता नहीं होना चाहिए।

1857 के स्वतंत्रता संग्रामियों ने धर्म पर अलग होते हुए भी अपने साझा दुश्मन यानी अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ कन्धे से कन्धा मिलाकर लड़ाई लड़ी थी। **भगतसिंह ने इस बात को ही कहा था कि "यदि धर्म को अलग कर दिया जाये तो राजनीति पर हम सभी इकट्ठे हो सकते है। धर्मों में हम चाहे अलग-अलग ही रहें''.. "हमारा ख्याल है कि भारत के सच्चे हमदर्द हमारे बताये इलाज पर ज़रूर विचार करेंगे और भारत का इस समय जो आत्मघात हो रहा है, उससे हमे बचा लेंगे।"।** *(भगतसिंह, साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज, 1928)* भगतसिह का यह पैगाम हमें घर-घर तक ले जाना होगा। 1857 में हम हारे थे लेकिन इस लड़ाई के सबक़ों को सीखकर ही हमने 1947 में अंग्रेज़ों को देश से भगाया था। लेकिन जब भी हम इस सबक़ को भूलते हैं तो अंग्रेज़ों द्वारा पैदा किये गये और संघ द्वारा पाल पोसकर बड़े किये साम्प्रदायिकता के दानव का शिकार होकर एक-दूसरे का ख़ून बहाते हैं और इसका फ़ायदा हमेशा सत्ताधारी शासक वर्गों को पहुँचता है। हमें अपने अधिकारों की लड़ाई जीतनी है तो धर्म को पूर्णत: निजी मसला बनाकर हिन्दू-मुसलमान एकता क़ायम करनी ही होगी। भगतसिंह और उनके साथियों का यही सन्देश था और 1857 के संघर्ष की यही विरासत है।

नोएडा और मानेसर में गिरफ्तार मज़दूरों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों व छात्रों को रिहा करो! सभी अन्यायपूर्ण मुक़दमे वापस लो! नोएडा में हुई हिंसा में उत्तर प्रदेश पुलिस की कथित भूमिका की उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच करो!

(पेज 1 से आगे)

होने की हद तक कम बढ़ोत्तरी का नतीजा यह है कि स्वैच्छिक ओवरटाइम वास्तव में स्वैच्छिक नहीं हो सकता। क्योंकि इतनी कम मज़दूरी मिलेगी तो मज़दूर को ओवरटाइम तो करना ही पड़ेगा और वह ख़ुद ही ओवरटाइम माँगेगा और अपने आपको इंसानी ज़िन्दगी की शर्तों से भी वंचित करेगा। पूरे देश में आम तौर पर अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूर और औपचारिक क्षेत्र के अनौपचारिक मज़दूर, यानी हर जगह जो ठेका, दिहाड़ी और कैजुअल के तौर पर काम करने वाले मज़दूर हैं, उनके लिए 12 घण्टे काम करना एक प्रकार से अनिवार्य है। इसके बिना वे अपनी और अपने परिवार की गुज़र-बसर कर ही नहीं सकते। वैसे तो उत्तर प्रदेश और हरियाणा में भाजपा सरकारों ने वायदा किया है कि तमाम कम्पनियाँ और मालिकान व प्रबन्धन ओवरटाइम का भुगतान डबल रेट से करेंगे, लेकिन वास्तव में ऐसा होगा या नहीं, यह तो समय ही बतायेगा। मन्दी के समय में पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े में किसी भी प्रकार की कमी नहीं चाहता है। अगर वह डबल रेट से ओवरटाइम के भुगतान को लागू नहीं करता तो इन पूँजीपतियों की चहेती भाजपा सरकारें वास्तव में इसे लागू करवाने के लिए कुछ करेंगी या नहीं, यह भी एक बड़ा सवाल है। ऊपर से हरियाणा और उत्तर प्रदेश में कितने कारखाना मालिक व कम्पनियाँ वाकई नयी वेतन दरों के अनुसार मज़दूरों को भुगतान करेंगी, यह भी अभी स्पष्ट नहीं है। कुछ जगहों से यह ख़बरें अभी से आ रही हैं कि घोषित बढ़ोत्तरी से बेहद कम बढ़ोत्तरी करके मज़दूरों को मज़दूरी दी जा रही है। मज़दूरों में इसे लेकर भारी असन्तोष मौजूद है। आज तक तो भाजपा सरकार ने श्रम कानूनों को लगातार खुलेआम तोड़ने वाली कम्पनियों और मालिकान-प्रबन्धन पर कोई कार्रवाई नहीं की। दिखावे के लिए योगी सरकार ने कुछ ठेकेदारों के लाईसेंस रद्द किये हैं। लेकिन कम्पनियों और उनके प्रबन्धन व मालिकान पर कोई कार्रवाई नहीं की गयी। कभी कोई पूँजीवादी सरकार ऐसा करती भी नहीं है। **यानी हर प्रकार के क़ानून को खुलेआम तोड़ने की मालिकों के वर्ग को पूरी आज़ादी है, लेकिन मज़दूर अगर प्रतिरोध करते हैं, हड़ताल करते हैं या आन्दोलन करते हैं तो तत्काल उन्हें अपराधी घोषित कर दिया जाता है और उनका बर्बर पुलिसिया दमन किया जाता है, जैसा कि योगी आदित्यनाथ की सरकार व पुलिस ने नोएडा में किया है।**

मज़दूरों में जो गुस्सा और असन्तोष मौजूद है, उसे दमन के बूते स्थायी तौर पर दबा देने का मुग़ालता पूरे देश में तमाम राज्य सरकारें और केन्द्र सरकार पाले बैठी हैं। **लेकिन अगर मज़दूर दो वक़्त की रोटी भी ढंग से नहीं खा पायेगा, अपने बच्चों का दवा-इलाज नहीं करा पायेगा, कमरे का किराया नहीं दे पायेगा, रसोई गैस नहीं ख़रीद पायेगा, तो सिवाय लड़ने के उसके पास रास्ता ही क्या बचता है?** क्या आदित्यनाथ की फ़ासीवादी भाजपा सरकार को यह लगता है कि मज़दूर 13 से 16 हज़ार रुपये महीने में अपनी और अपने परिवार की गुज़र-बसर कर सकता है? अगर हाँ, तो उनको इतने वेतन में एक साल गुज़ार कर देखना चाहिए।

पूँजीवादी व्यवस्था की आन्तरिक गति से नियमित अन्तराल पर बार-बार पैदा होने वाली आम वैश्विक मन्दी के दौर में पूँजीपति आर्थिक संकट का पूरा बोझ मज़दूरों पर डालता है। इस बार भी उसने ऐसा ही किया है। पश्चिम एशिया में साम्राज्यवादी अमेरिका और नस्लवादी औपनिवेशिक राज्य इज़रायल द्वारा ईरान पर थोपे गये युद्ध के फलस्वरूप रसोई गैस की किल्लत पैदा हो गयी है और उसकी क़ीमतों में भारी बढ़ोत्तरी की गयी है और पूँजीपति वर्ग की मन्दी गहरा गयी है। मज़दूरों को तो सरकारी दरों पर रसोई गैस मिलती भी नहीं और उन्हें दूनी-चौगुनी दरों पर रसोई गैस काला बाज़ारियों से ख़रीदनी पड़ती है। **इसके कारण हालत यह हुई है कि शहरों में रहना और काम करना ही मज़दूरों के लिए मुश्किल हो गया है और हज़ारों-लाखों की तादाद में मज़दूर अपने गाँवों को भी लौट गये हैं।** पश्चिम एशिया के देशों में काम करने वाली एक भारी मज़दूर आबादी लाखों की संख्या में स्वदेश वापस लौटी है। नतीजतन, कोविड काल के विपरीत इस बार उतनी आबादी को भी खेती का क्षेत्र नहीं सोख सकता है, जितना कि लॉकडाउन के समय उसने सोखा था। ऊपर से खेती का क्षेत्र भी फर्टिलाइज़र आदि की कमी के कारण और भी गहरे संकट की कगार पर खड़ा है। कोविड के समय भी मेहनतकशों की एक भारी आबादी जो शहरों से गाँवों तक पहुँच पायी थी, वह भुखमरी और कुपोषण के हालात में जी रही थी और इस बार स्थिति और भी ख़राब होने की आशंका है। कोविड के समय लाखों की संख्या में तो मज़दूर वापस लौट ही नहीं पाये और या तो महामारी के कारण या गाँव जाने के रास्ते में ही जान गवाँ बैठे। इस बार स्थिति अधिक बुरी होने का ख़तरा है। भारत सरकार ने साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा ईरान पर थोपे गये युद्ध के दौरान जिस प्रकार की विदेश नीति अपनायी, उसने भारत का गैस व तेल संकट और भी भयंकर बना देने की ज़मीन तैयार कर दी है। इसका ख़ामियाज़ा भी देश की मेहनतकश जनता को ही भुगतना है।

इसी समय 1 अप्रैल से मोदी सरकार ने नये लेबर कोड भी लागू कर दिये हैं, जो प्रभावत: मज़दूरों के सभी अधिकारों को छीन लेते हैं। जो अधिकार कागज़ों पर बने हुए हैं, उन्हें भी व्यावहारिक तौर पर हासिल कर पाने को मज़दूरों और कर्मचारियों के लिए लगभग असम्भव बना दिया है। इसके ख़िलाफ़ 12 फ़रवरी को देश की केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने अपनी दन्त-नखविहीनता दिखाते हुए फिर से एक दिन की रस्मी हड़ताल आयोजित की थी और उसमें भी अधिकांश स्थानों पर इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों ने हड़तालें की ही नहीं! अधिकांश जगहों पर वे काली पट्टियाँ बाँध कर काम करने का आह्वान कर रहे थे। तो यह भला हड़ताल कैसे हुई? देश की संसदीय वाम पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों की यही समझौतापरस्ती है जिसके कारण वे मज़दूरों का विश्वास खो चुकी हैं। वे बन्द दरवाज़ों के पीछे मोदी सरकार से समझौते कर रही हैं और मज़दूरों को एक जुझारू व निर्णायक संघर्ष के लिए तैयार करने और उसमें उन्हें नेतृत्व देने के बजाय उनके संघर्षों को विनियमित कर उन सीमाओं में क़ैद रखने का काम कर रही हैं, जो देश के पूँजीपति वर्ग और उनकी सरकारों के लिए सुविधाजनक हो।

लेकिन शासक वर्ग के ये सारे क़दम, चाहे वे पुलिसिया दमन के हों या समझौतापरस्त ट्रेड यूनियनों द्वारा मज़दूरों के संघर्ष को सीमित करने के हों, श्रम और पूँजी के अन्तरविरोध को हमेशा पूँजीपति वर्ग के लिए सुविधाजनक दायरों में क़ैद नहीं रख सकते। यही कारण है कि जब मज़दूरों के लिए 10 हज़ार से 15 हज़ार वेतन में जीवनयापन असम्भव हो गया, जब वर्षों से उनके भीतर पनप रहा गुस्सा और असन्तोष, अरसे से उन पर थोपी जा रही ज़िल्लत एक सीमा से आगे चली गयी तो उनके धैर्य का प्याला अब छलकने लगा है। देश में जगह-जगह मज़दूर रह-रहकर अपनी जायज़ क़ानूनी माँगों को लेकर सड़कों पर उतर रहे हैं और पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली तमाम सरकारों और विशेष तौर पर उनकी चहेती भाजपा सरकारों द्वारा उनके दमन के तमाम प्रयासों के बावजूद वे पीछे नहीं हट रहे हैं। तात्कालिक तौर पर, मज़दूरी में की गयी मामूली बढ़ोत्तरी और पुलिसिया दमन के कारण जगह-जगह कुछ समय के लिए संघर्ष स्थगित ज़रूर हुए हैं, लेकिन उन्हें समाप्त मान लेना एक भूल होगी। ये मज़दूरों के मौजूदा जीवन की कार्य स्थितियाँ ही हैं, जिनके कारण वे आन्दोलन का रास्ता अपनाने को बाध्य हैं। अगर किसी को लगता है कि वे किसी के भड़काने पर आन्दोलन के रास्ते पर जा रहे हैं, तो वह समूचे मज़दूर वर्ग का नवजातीकरण करने की मूर्खतापूर्ण सोच से ग्रस्त है। जब तक न्याय नहीं है, जब तक कोई सुनवाई नहीं हैं, तब तक मज़दूर पीठ झुका कर ग़ुलामों के समान आख़िर कब तक काम कर सकते हैं? यह बात कहीं न कहीं एक हद तक हुक्मरानों की अक़्ल में भी घुसी है और वे मामूली वेतन बढ़ोत्तरी करके, तरह-तरह के वायदे और जुमलेबाज़ी करके और सरकारी प्रचार करके मज़दूरों को शान्त करने का प्रयास कर रहे हैं।

लेकिन इसके साथ जो दूसरी चीज़ शासक वर्ग कर रहे हैं वह है फ़ासीवादी दमन का आतंक फैलाना। इसका सबसे नंगा प्रदर्शन उत्तर प्रदेश में योगी आदित्यनाथ की फ़ासीवादी सरकार ने किया है। इसलिए नोएडा के मज़दूर संघर्ष और उसके पुलिसिया दमन पर अलग से बात करना आवश्यक है। हरियाणा में भी सरकार ने दमन का रास्ता अख़्तियार किया है, लेकिन उत्तर प्रदेश में नोएडा में यह दमन कहीं ज्यादा बड़े पैमाने पर हुआ है।

नोएडा में 11 अप्रैल को नोएडा पुलिस की स्पेशल टास्क फोर्स ने मज़दूर हड़ताल को व्यवस्थित और शान्तिपूर्ण तरीक़े से चलाने वाले चार श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं **रूपेश राय, सृष्टि गुप्ता, आकृति चौधरी** और **मनीषा चौहान** को बोटैनिकल गार्डन मेट्रो स्टेशन, नोएडा से शाम 7 बजे गिरफ्तार कर लिया। रूपेश रॉय एकता संघर्ष समिति (कुलेसरा, नोएडा) और 'बिगुल मज़दूर दस्ता' नामक मंच से जुड़े हैं, सृष्टि गुप्ता एक छात्र व युवा कलाकार हैं, प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग से जुड़ी हैं और श्रम अधिकारों के लिए भी काम करती रही हैं, आकृति चौधरी दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्र हैं, दिशा छात्र संगठन से जुड़ी हैं और छात्र व श्रम अधिकार कार्यकर्ता हैं, और मनीषा चौहान एक गारमेण्ट मज़दूर और श्रम अधिकार कार्यकर्ता हैं और एकता संघर्ष समिति से जुड़ी हैं।

इस गिरफ्तारी के दौरान, उत्तर प्रदेश पुलिस ने भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय गिरफ्तारी के दौरान लागू किये जाने वाले किसी भी दिशा-निर्देश का पालन नहीं किया। तीन स्त्री कार्यकर्ताओं को सूरज डूबने के बाद गिरफ्तार किया गया। लेकिन गिरफ्तार करने वाली उत्तर प्रदेश की टीम में कोई भी महिला पुलिसकर्मी नहीं थी। ये पुलिस वाले वर्दी और नाम का प्लेट भी नहीं पहने हुए थे। उन्होंने बिना किसी वारण्ट, नोटिस या पूर्वसूचना के रूपेश, सृष्टि, आकृति और मनीषा को बोटैनिकल गार्डन मेट्रो स्टेशन से अगवा कर लिया। वास्तव में, यह गिरफ्तारी नहीं थी, बल्कि अगवा किया जाना था। उत्तर प्रदेश पुलिस की इस ग़ैर-क़ानूनी हरक़त का वीडियो बाक़ायदा ऑनलाइन मौजूद है, लेकिन उत्तर प्रदेश प्रशासन इस पर आँख मूँदे बैठा है। इसकी तुलना मज़दूरों के आन्दोलन से करें: अगर मज़दूर अपने जायज़ हक़ों के लिए भी हड़ताल करते हैं, तो प्रशासन से लेकर पुलिस और न्यायपालिका तक स्वयं हरक़त में आ जाते हैं! लेकिन मालिक से लेकर पुलिस तक खुलेआम क़ानूनों की धज्जियाँ उड़ायें, कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

इन गिरफ्तार कार्यकर्ताओं पर उत्तर प्रदेश पुलिस ने मज़दूरों को हिंसा के लिए उकसाने का आरोप लगाकर उन पर कई एफ़.आई.आर. दर्ज़ कर दीं। लम्बे समय तक इन कार्यकर्ताओं के साथियों, वक़ीलों और परिजनों को नोएडा फ़ेज़ 2 पुलिस थाने पर उनके बारे में कोई सूचना नहीं दी गयी। उस रात थाने पर नोएडा कमिश्नर लक्ष्मी सिंह भी कुछ समय के लिए मौजूद थीं। उन्होंने भी इन कार्यकर्ताओं के परिजनों, वकील व साथियों को कोई जानकारी नहीं दी। थाने के बाहर दर्जनों मज़दूर व समर्थक बार-बार इन गिरफ्तार कार्यकर्ताओं के बारे में जानकारी की माँग करते रहे लेकिन उन्हें कोई जानकारी नहीं दी गयी। पुलिस रात आते-आते इस बात से ही इंकार करने लगी कि उत्तर प्रदेश पुलिस ने रूपेश, सृष्टि, आकृति और मनीषा को गिरफ्तार भी किया है! जब गिरफ्तार कार्यकर्ताओं के साथियों ने पुलिस को बाक़ायदा गिरफ्तारी किये जाने का वीडियो दिखाया और उत्तर प्रदेश पुलिस की उस गाड़ी का नम्बर प्लेट वीडियो में दिखाया जिसे इन कार्यकर्ताओं को अगवा करने में इस्तेमाल किया गया था, तो उनकी बोलती बन्द हो गयी। **स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश पुलिस मज़दूरों को दबाने के लिए हर क़ानून की खुलेआम धज्जियाँ उड़ा रही थी।**

अगले दिन गिरफ्तार किये गये चारों श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं को उनके परिजनों या वक़ीलों को सूचना दिये बिना नोएडा के सूरजपुर जिला न्यायालय में पेश किया गया और न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया। इसके पहले न तो गिरफ्तार कार्यकर्ताओं के मित्रों, साथियों या परिजनों को गिरफ्तारी के बारे में सूचित किया गया और न ही उनके वक़ील को। **यह एक बार फिर से उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा क़ानून का सीधे तौर पर उल्लंघन था, जो इन गिरफ्तारियों को ही ग़ैर-क़ानूनी बना देता है।** मोदी सरकार द्वारा लागू की गयी दमनकारी भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता के सेक्शन 48 के अनुसार पुलिस द्वारा किसी को भी गिरफ्तार किये जाने पर उसके मित्र, परिजन या गिरफ्तार किये गये व्यक्ति द्वारा बताये गये किसी व्यक्ति को सूचित करना और उसे गिरफ्तारी का कारण और आधार बताना पुलिस के लिए अनिवार्य है। क्या उत्तर प्रदेश पुलिस ने ऐसा किया? नहीं। अगर कोई मज़दूरों के पक्ष में आवाज़ उठाता है, तो देश का सारा संविधान और क़ानून न जाने कहाँ चला जाता है!

इसी बीच, उत्तर प्रदेश पुलिस और नोएडा से गयी स्पेशल टास्क फोर्स के लोग 10 अप्रैल से ही 'मज़दूर बिगुल' के सोशल मीडिया पेजों से नोएडा व मानेसर में मज़दूर हड़तालों की रिपोर्टिंग को हटवाने का दबाव बनाने के लिए बार-बार लखनऊ स्थित पुस्तक प्रतिष्ठान 'जनचेतना' का दौरा कर रहे थे, क्योंकि 'जनचेतना' इस मज़दूर अख़बार का प्रमुख वितरक है। **13 अप्रैल को उन्होंने 'जनचेतना' से प्रसिद्ध कवयित्री, आलोचक, बुद्धिजीवी और सामाजिक कार्यकर्ता कात्यायनी, जाने-माने वरिष्ठ पत्रकार, अनुवादक, भगतसिंह व उनके साथियों की**

(पेज 13 पर जारी)

नोएडा और मानेसर में गिरफ्तार मज़दूरों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों व छात्रों को रिहा करो! सभी अन्यायपूर्ण मुक़दमे वापस लो! नोएडा में हुई हिंसा में उत्तर प्रदेश पुलिस की कथित भूमिका की उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच करो!

(पेज 12 से आगे)

संकलित रचनाओं के सम्पादक व जनबुद्धिजीवी सत्यम वर्मा, और 'अमर उजाला' के लखनऊ संस्करण के भूतपूर्व सम्पादक संजय श्रीवास्तव को हिरासत में ले लिया, बिना कोई पूछताछ का नोटिस दिये, बिना उनके मोबाइल फ़ोनों की जाँच का नोटिस दिये उनसे पूछताछ की और उनके मोबाइल फ़ोनों की भी अनधिकृत जाँच की। उनका दावा था कि वे नोएडा में 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के सामने हुई (तमाम मीडिया संस्थानों द्वारा पेश प्रमाणों के आधार पर कथित तौर पर स्वयं उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा ही भड़काई गयी) हिंसा के बारे में पूछताछ कर रहे हैं! लेकिन अगर ऐसी कोई पूछताछ करनी भी हो, अगर किसी के मोबाइल फ़ोन जैसी निजी वस्तु की जाँच करनी भी हो, तो क़ानून के अनुसार उसका एक उपयुक्त तरीक़ा होता है। क्या पुलिस ने इन तौर-तरीक़ों का पालन किया? नहीं! इन बुद्धिजीवियों व सामाजिक कार्यकर्ताओं का दोष सिर्फ़ इतना था कि उन्होंने ऑनलाइन सोशल मीडिया पर नोएडा व मानेसर में हो रहे मज़दूर संघर्षों का समर्थन किया था। 13 अप्रैल को रात में 'जनचेतना' के वॉलण्टियर व सामाजिक कार्यकर्ता लालचन्द्र को भी पुलिस पूछताछ के नाम पर ले जाती है। इन सभी को उसी दिन रिहा कर दिया जाता है। **ग़ौरतलब है कि यह सारी कार्रवाई पुलिस क़ानूनी तौर पर स्थापित प्रक्रियाओं का उल्लंघन करते हुए करती है।**

इसके बाद, 17 अप्रैल की शाम एस.टी.एफ़. की टीम फिर से 'जनचेतना' पहुँचती है। 'जनचेतना' पुस्तक प्रतिष्ठान 'अनुराग ट्रस्ट' नामक पंजीकृत ट्रस्ट की इमारत में चलता है, जहाँ 'जनचेतना' एक किरायेदार है। पुलिस पहले घण्टों तक कात्यायनी, सत्यम वर्मा, प्रसिद्ध कलाकार रामबाबू और अन्य कई लोगों को जबरन वहाँ बिठाकर रखती है और एक अन्य श्रम अधिकार कार्यकर्ता आदित्य आनन्द के बारे में पूछताछ करती है, बिगुल मज़दूर दस्ता के बारे में पूछताछ करती है, **और फिर केवल इमारत की एक मंज़िल का सर्च वारण्ट होने के बावजूद पूरी इमारत की छानबीन करती है, लोगों के निजी कमरों में जाती है और वहाँ से बहुत-सा सामान ज़ब्त करती है, जिसमें कई कम्प्यूटर, लैपटॉप, मोबाइल फ़ोन, क़ानूनी कागज़ात, किताबें आदि शामिल थीं।** ज़ब्त सामान का एक समुचित मेमो व उपयुक्त रूप से बनाया गया मेमो तक नहीं दिया गया। **इसी समय, साथी सत्यम वर्मा को पुलिस हिरासत में ले लेती है। यह शाम को क़रीब 8 बजे होता है। तीन घण्टे तक पुलिस सत्यम वर्मा को कहाँ ले जाती है, उसकी कोई जानकारी पुलिस न तो सत्यम के साथियों को देती है, न उनके वक़ीलों को और न ही उनके परिजनों को। इसके बाद, रात 11 बजे के बाद पुलिस सत्यम वर्मा को उनके निवास स्थान पर लेकर जाती है और बिना किसी सर्च वारण्ट के उनके कमरे की तलाशी लेती है और वहाँ से भी उनका निजी कम्प्यूटर, लैपटॉप, डायरियाँ और नोटबुक उठा ले जाती है। साथी कात्यायनी द्वारा पूछे जाने पर कि वे सत्यम को कहाँ ले जा रही है, पुलिस कोई जवाब नहीं देती है। उत्तर प्रदेश पुलिस का यह सारा कुकर्म सी.सी.टी.वी. फुटेज व कुछ नागरिकों द्वारा रिकार्ड किये गये वीडियो में मौजूद है कि 17 तारीख़ की रात साथी सत्यम वर्मा को किस ग़ैर-क़ानूनी तौर-तरीक़े से उत्तर प्रदेश पुलिस ने अगवा किया। न तो गिरफ्तारी का कोई आधार बताया गया, न ही किसी परिजन, मित्र या वक़ील को इसकी सूचना दी गयी। सत्यम वर्मा को क़रीब 40 घण्टे के बाद पुलिस नोएडा के सूरजपुर कोर्ट में पेश करती है और फिर उन्हें भी जेल भेज दिया जाता है। मोदी सरकार की फ़ासीवादी भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता के ही अनुसार गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घण्टे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश करना अनिवार्य होता है। क्या सत्यम वर्मा को 24 घण्टे के भीतर लखनऊ में निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया? नहीं। क्या उन्हें 24 घण्टे के भीतर किसी भी मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया? नहीं। यहाँ तक कि नोएडा में उन्हें 18 अप्रैल की रात एक निजी सैफ्रन लिविंग हॉस्टल में रात भर रखा गया और वह भी हथकड़ी में।** देश के एक जाने-माने अग्रणी जनबुद्धिजीवी, अनुवादक, पत्रकार व सामाजिक कार्यकर्ता के साथ सारे क़ानूनों को ताक पर रखकर उत्तर प्रदेश पुलिस अपराधियों जैसा बर्ताव करती है। अगले दिन 19 अप्रैल को 40 घण्टे से भी ज्यादा समय बीत जाने के बाद उन्हें नोएडा के सूरजपुर जिला न्यायालय में पेश कर कई फ़र्जी मुकदमे लगाकर जेल भेज दिया गया। उनका दोष क्या था? मेहनतकश जनता और मज़दूरों का पक्ष चुनना। सत्यम वर्मा की जीवनसाथी शाकम्भरी द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका के अनुसार उत्तर प्रदेश पुलिस कम्पनियों, मालिकान और प्रबन्धन के इशारों पर मज़दूरों के आन्दोलन को दबाने के लिए खुलेआम देश के संविधान, क़ानून और सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देशों की धज्जियाँ उड़ा रही है।

17 अप्रैल की ही रात एक अन्य श्रम अधिकार कार्यकर्ता आदित्य आनन्द को तमिलनाडु के तिरुचिरपल्ली से अन्तरराज्यीय गिरफ्तारी के सर्वोच्च न्यायालय के सभी दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करते हुए उत्तर प्रदेश पुलिस ने गिरफ्तार किया। यहाँ तक कि मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरई पीठ के समक्ष आदित्य आनन्द के वकीलों द्वारा दायर याचिका में इस गिरफ्तारी को उचित प्रक्रिया का उल्लंघन करके की गयी गिरफ्तारी बताया है और इस बेंच ने इस मसले को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में उठाने की बात कही है। आदित्य आनन्द उन श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं में से एक थे जो नोएडा में मज़दूरों की हड़ताल को शान्तिपूर्ण बनाये रखने का हरसम्भव प्रयास कर रहे थे जैसा कि अब तक सार्वजनिक हो चुके वीडियो से ज़ाहिर है। आदित्य आनन्द पेशे से एक इंजीनियर हैं और जमशेदपुर एनआईटी के छात्र रहे हैं। कम उम्र से ही उन्होंने भगतसिंह के विचारों को मानना शुरू कर दिया था और वे हमेशा ही जनता के तमाम संघर्षों में शामिल रहते थे, चाहे वे छात्रों के हों, युवाओं के हों, स्त्रियों के हों या फिर मज़दूरों के। बच्चों के बीच भी उन्होंने शैक्षणिक और रचनात्मक कार्य किये हैं और साथ ही कला और विज्ञान की गतिविधियों में भी लगातार शामिल रहे हैं। आदित्य आनन्द को उत्तर प्रदेश पुलिस 14 अप्रैल से ही नोएडा की हिंसा का "मास्टरमाइण्ड" बता रही थी (ये "मास्टरमाइण्ड", "किंगपिन" आदि जैसे बाज़ारू शब्द उत्तर प्रदेश पुलिस और दलाल गोदी मीडिया, दोनों के ही प्रिय शब्द हैं!) और गोदी मीडिया बिना कोई जाँच किये कभी पाकिस्तान का एजेण्ट तो कभी नक्सली आतंकवादी बताने की कोशिश कर रही थी। आदित्य आनन्द की तस्वीरें गोदी मीडिया के चैनल फिल्मी संगीत के साथ नेशनल टेलीविज़न पर चला रहे थे और इस प्रकार उनके ख़िलाफ़ एक मॉब लिंचिंग जैसा माहौल देश में बनाने की कुत्सित कोशिश गोदी मीडिया के कई चैनल व अख़बार लगातार कर रहे थे, जिस बात को आदित्य आनन्द के भाई द्वारा दायर याचिकाओं में भी इंगित किया गया है। **जब अभी तक जाँच ही नहीं की गयी थी, तो पुलिस को पहले से ही कैसे पता था कि आदित्य आनन्द हिंसा का "मास्टरमाइण्ड" है, पाकिस्तानी एजेण्ट है, नक्सली है, आदि? क्या पुलिस ने इसके पक्ष में कोई भी सबूत पेश किये थे? क्या आदित्य आनन्द की कॉल डिटेल्स या उनके मोबाइल की लोकेशन से पुलिस साबित कर सकती है कि वह 13 अप्रैल को नोएडा में थे या नहीं? क्या उनका कोई वीडियो या व्हाट्सऐप ग्रुप में ऐसा कोई सन्देश पुलिस दिखा सकती है जो आदित्य को हिंसा भड़काते हुए दिखाये? नहीं। वास्तव में, पुलिस के झूठे दावों के विपरीत सारे सबूत मौजूद हैं और पब्लिक डोमेन में हैं। आदित्य आनन्द का व्हाट्सऐप ग्रुप में पड़ा वीडियो भी सार्वजनिक तौर पर ऑनलाइन मौजूद है जिसमें आदित्य आनन्द मज़दूरों को बता रहे हैं कि हड़ताल करना उनका संवैधानिक अधिकार है लेकिन उन्हें हर हालत में अपनी हड़ताल को शान्तिपूर्ण तरीक़े से चलाना चाहिए और किसी भी हालत में हिंसा भड़काने के प्रयासों को नाकाम कर देना चाहिए। फ़ेसबुक पर बाक़ायदा वीडियो मौजूद है जिसमें आदित्य आनन्द और रूपेश राय मज़दूरों को अपनी हड़ताल को शान्तिपूर्ण तरीक़े से जारी रखने की शपथ दिलवा रहे हैं। तो फिर पुलिस ने उन्हें क्यों गिरफ्तार किया? आप स्वयं सोचें!**

आदित्य को 17 अप्रैल की रात गिरफ्तार कर पुलिस तमिलनाडु में किसी मजिस्ट्रेट से ट्रांज़िट रिमाण्ड लिये बिना नोएडा ले आयी, जैसा कि मदुरई बेंच के समक्ष दायर याचिका में आदित्य आनन्द के भाई द्वारा दावा किया गया है। वास्तव में, गिरफ्तारी के बारे में तमिलनाडु पुलिस को सूचित ही नहीं किया गया था और रेलवे पुलिस की मदद से उत्तर प्रदेश एस.टी.एफ़. के लोगों ने गिरफ्तारी की थी। ये सभी अन्तरराज्यीय गिरफ्तारी के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये दिशा-निर्देशों का उल्लंघन था, जिस पर मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरई पीठ ने भी टिप्पणी की है।

इसके बाद 18 अप्रैल को जाने-माने छात्र कार्यकर्ता और दिल्ली विश्वविद्यालय छात्रसंघ में अध्यक्ष पद का चुनाव लड़ चुके **हिमांशु ठाकुर** को उत्तर प्रदेश पुलिस ने शालीमार बाग, दिल्ली के उनके निवास स्थान से गिरफ्तार कर लिया। उनके ऊपर भी नोएडा हिंसा में "मास्टरमाइण्ड" होने का आरोप लगा दिया गया! **इस गिरफ्तारी को भी आम तौर पर गिरफ्तारी पर डी.के. बोस फैसले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये दिशा-निर्देशों का उल्लंघन करके अंजाम दिया गया। उन्हें दिल्ली में किसी भी निकटतम मजिस्ट्रेट के सामने पेश नहीं किया गया। उन्हें कोई पूर्व सूचना या नोटिस नहीं दिया गया था और न ही उनके निवास स्थान की तलाशी का कोई सर्च वारण्ट पुलिस के पास था। इन सारे नियमों-क़ानूनों का उल्लंघन करते हुए पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया।** हिमांशु ठाकुर 'दिशा छात्र संगठन' से जुड़े हुए हैं और पिछले कुछ वर्षों से आम तौर पर जनता के विभिन्न संघर्षों में एक सामाजिक कार्यकर्ता के तौर पर जाते रहे हैं। उनका भी दोष सिर्फ़ इतना था कि वे नोएडा के मज़दूरों के जायज़ संघर्षों का समर्थन करने के लिए नोएडा गये थे।

हिरासत में लिए जाने के बाद पुलिस ने रूपेश राय के साथ मारपीट की, आदित्य आनन्द के साथ 15-20 पुलिसवालों ने एक अज्ञात स्थान पर 2 घण्टे तक मारपीट की, और हिमांशु ठाकुर को भी चमड़े की बेल्ट से हाथ पर मारा गया। इसके बाद, पुलिस कस्टडी में भी आदित्य आनन्द के साथ पुलिस ने बुरी तरह से मारपीट की। इसके बाद, जब कोर्ट में आदित्य आनन्द ने मजिस्ट्रेट के सामने चिल्लाकर कस्टडी में पुलिस द्वारा की गयी हिंसा का बयान किया तो मजिस्ट्रेट को मजबूर होकर डीसीपी जाँच का आदेश देना पड़ा। लेकिन इतिहास से मिले अनुभवों के आधार पर बात करें तो ऐसी जाँचों से ज्यादा कुछ निकलेगा या नहीं, यह एक बड़ा सवाल है। पुलिस अपनी ही जाँच कितनी वस्तुपरकता से करती है, यह सारी दुनिया जानती है। **कस्टडी में होने वाली हिंसा पर सुप्रीम कोर्ट के वकील कॉलिन गोंज़ाल्वेस द्वारा एक याचिका दायर की गयी, जिसके बाद सुप्रीम कोर्ट ने उत्तर प्रदेश पुलिस व प्रशासन के अधिकारियों को 8 मई को नोटिस जारी किया।** इसी दौरान, आदित्य आनन्द को गुड़गाँव पुलिस ने मानेसर में हुई हिंसा का भी "मास्टरमाइण्ड" बताना शुरू कर दिया और वहाँ की एफ़.आई.आर. में भी उनका नाम शामिल कर दिया।

पुलिस ने उपरोक्त सातों गिरफ्तार मज़दूर कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों व छात्रों (सत्यम, आदित्य, रूपेश, हिमांशु, सृष्टि, आकृति, मनीषा) के बारे में अब तक कोर्ट में कोई भी सबूत पेश नहीं किया और बस तारीख़ों पर तरीख़ें माँगी हैं। इस बीच उत्तर प्रदेश पुलिस ने गोदी मीडिया के ज़रिये एक मीडिया ट्रायल चलाने की पूरी कोशिश की ताकि बिना किसी जाँच या मुकदमे के ही इन कार्यकर्ताओं को दोषी ठहरा दिया जाय। कभी पाकिस्तान लिंक की बात की गयी, कभी नक्सलवाद का झूठा आरोप लगाया गया, तो कभी 'बाहरी तत्वों' आदि की बात की गयी। लेकिन पुलिस और गोदी मीडिया का कोई दुष्प्रचार जनता के बीच जड़ें नहीं जमा पा रहा है और जनता लगातार पुलिस की भूमिका पर ही सवाल उठा रही है।

इस बीच, इन गिरफ्तार कार्यकर्ताओं के लिए शुरू किये गये अभियान 'कारवाँ' द्वारा सबूतों के साथ इस बात का खुलासा किया गया ख़ुद उत्तर प्रदेश पुलिस ने शान्तिपूर्ण रूप से जारी मज़दूर हड़ताल को हिंस्र बनाने की साज़िश की थी ताकि फिर हड़ताल का दमन करने का वैधीकरण जनता के सामने हासिल किया जा सके। 'कारवाँ' के सामाजिक कार्यकर्ताओं ने प्रेस वार्ता करके समूचे प्रेस को सबूत दिखाये कि व्हाट्सऐप ग्रुपों में उत्तर प्रदेश पुलिस के लोग, यहाँ तक कि एक पुलिस अधिकारी का ड्राइवर और एक सब-इंस्पेक्टर बीना, तक घुसे हुए थे और वे भड़काऊ तस्वीरें, स्क्रीनशॉट, मैसेज व ऑडियो इन ग्रुपों में डाल रहे थे। इस बात के प्रमाण भी कुछ प्रत्यक्षदर्शी मज़दूरों ने रखे हैं कि नोएडा में 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के समक्ष हुई हिंसा पुलिस द्वारा ही भड़काई गयी थी। 13 अप्रैल के दिन नाइट शिफ़्ट में काम करने वाले सैंकड़ों स्त्री व पुरुष मज़दूर कारखाने से जब बाहर निकल कर घर वापस लौट

(पेज 14 पर जारी)

नोएडा और मानेसर में गिरफ्तार मज़दूरों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों व छात्रों को रिहा करो! सभी अन्यायपूर्ण मुक़दमे वापस लो! नोएडा में हुई हिंसा में उत्तर प्रदेश पुलिस की कथित भूमिका की उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच करो!

(पेज 13 से आगे)

रहे थे, तो पुलिस ने उन्हें घर जाने से रोक दिया और कारखाने में बन्द करने का प्रयास किया। पुलिस वाले यह बोल रहे थे कि "तुम लोग बाहर निकलकर प्रदर्शन करोगे" और इसलिए उन्हें बन्द रखने का प्रयास किया जा रहा था। रात भर के काम से थके मज़दूरों ने इस बात को मानने से इंकार किया तो पुलिस ने महिला मज़दूरों को बुरी तरह से मारना शुरू कर दिया। इसके बाद, बाक़ी मज़दूरों के धैर्य का प्याला भी छलक गया और फिर हिंसा की वारदात हुई। कारवाँ पत्रिका द्वारा पेश किये गये वीडियो अनुसार वास्तव में, हिंसा की शुरुआत ही उत्तर प्रदेश पुलिस ने की थी।

दूसरी बात, 11 अप्रैल और फिर 17 और 18 अप्रैल को गिरफ्तार किये गये श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों और छात्र कार्यकर्ताओं में से एक भी व्यक्ति 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के आस-पास भी मौजूद नहीं था। रूपेश, सृष्टि, आकृति और मनीषा तो 11 अप्रैल से ही हिरासत और फिर जेल में थे, भला वे 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के सामने कैसे हो सकते थे। सत्यम वर्मा तो पिछले 12 वर्षों से नोएडा गये ही नहीं थे और नोएडा में जारी मज़दूर आन्दोलन के पूरे समय के दौरान वे लखनऊ में थे! इसके अलावा, हिमांशु ठाकुर भी मदरसन कम्पनी के क़रीब भी मौजूद नहीं थे। ऐसे में, हिंसा भड़काने में इन कार्यकर्ताओं की कोई भी भूमिका साबित करना पुलिस के लिए असम्भव है। यही वजह है कि पुलिस ने इतनी पेशियाँ ज़िला व सेशन अदालत में होने के बावजूद इनके ख़िलाफ़ एक सबूत भी पेश नहीं कर पायी है। उल्टे पुलिस के ख़िलाफ़ हिंसा भड़काने के सबूत सामने आने लगे हैं। **7 मई को जनसत्ता अख़बार और एक्सप्रेस ग्रुप के यूट्यूब समाचार चैनल ने भी इस सच्चाई को रिपोर्ट किया। बाद में , 'द हिन्दू' और 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' ने भी हिंसा भड़काने में उत्तर प्रदेश पुलिस की भूमिका पर सबूतों के आधार पर गहरे सवालिया निशान खड़े किये।** जनता में भी यह सच्चाई तेज़ी से फैली। इन ख़बरों और रपटों का ही नतीजा था कि उत्तर प्रदेश पुलिस ने आनन-फ़ानन में कुछ मीडिया संस्थानों व सोशल मीडिया आईडी पर इन ख़बरों को दिखाने या शेयर करने के लिए एफ़आईआर कर दी। इसके बावजूद, ये ख़बरें जनता के बीच फैल चुकी थीं और जनता का बड़ा हिस्सा उत्तर प्रदेश पुलिस की नोएडा हिंसा में सन्देहास्पद भूमिका पर सवाल खड़े कर रहा था।

दूसरी ओर, उत्तर प्रदेश प्रशासन को अपना चेहरा बचाने के लिए नोएडा हिंसा की जाँच में उत्तर प्रदेश की आई.जी. अधिकारी और नोएडा की कमिश्नर लक्ष्मी सिंह (जोकि भाजपा विधायक राजेश्वर सिंह की पत्नी भी हैं!) को पृष्ठभूमि में करना पड़ा और उसने एक मजिस्ट्रेट स्तर की जाँच का आदेश दिया है, जिसकी अगुवाई अपर पुलिस कमिश्नर अजय कुमार कर रहे हैं। लेकिन यह एक्ज़िक्यूटिव मजिस्ट्रेट स्तर की ही जाँच है और एक पुलिसिया जाँच ही है। **जब उत्तर प्रदेश पुलिस की हिंसा में भूमिका ही कठघरे में खड़ी है, तो उत्तर प्रदेश पुलिस का अधिकारी ही स्वयं जाँच कैसे कर सकता है? ऐसी जाँच से निष्पक्ष रहने की उम्मीद कैसे की जा सकती है? इस पूरे मसले की अपेक्षाकृत साफ़ जाँच केवल सर्वोच्च न्यायालय की देखरेख में बनी कोई स्पेशल इन्वेस्टिगेशन टीम या कोई उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच आयोग ही कर सकता है।** इसके अलावा, किसी भी जाँच से कोई विशेष उम्मीद नहीं की जा सकती। आम तौर पर अब तक ऐसी जाँचें तरहम-बरहम कर पुलिस को ही बचाती हैं और अक्सर बेगुनाहों को फँसा देती हैं। यह जाँच इससे अलग कुछ कर पायेगी, इसकी गुंजाइश भी न के बराबर ही है।

अब जो तथ्य सामने आ चुके हैं उसके आधार पर अब तक उत्तर प्रदेश पुलिस ने कोई जाँच क्यों नहीं की? ख़ुद को पुलिस अधिकारी का ड्राइवर बताने वाले अनिल ने मज़दूरों के ग्रुप में घुसपैठ की और फिर उसमें ऐसी सामग्री डाली जो हिंसा के लिए भड़काती थी, उसके ऊपर एक महीने तक कोई जाँच क्यों नहीं बैठी? और यही काम करने वाली सब इंस्पेक्टर बीना के लिए नोएडा पुलिस झूठी दलीलें दे रही है! ये पुलिस वाले किस पुलिस अधिकारी के आदेशों पर मज़दूरों को हिंसा के लिए भड़का रहे थे, अभी तक इसका खुलासा क्यों नहीं किया गया है? इन सारे सवालों पर उत्तर प्रदेश पुलिस के बयान सन्देहास्पद क्यों हैं? गोदी मीडिया के दलाल चैनलों ने इस सच्चाई को अब तक क्यों नहीं दिखलाया? अब मजिस्ट्रेट जाँच बिठायी गयी है और जाँचकर्ता अधिकारी ने जनता से प्रमाण और गवाही माँगी है! पहले वे अभी से सार्वजनिक रूप से मौजूद उन सबूतों की जाँच क्यों नहीं करते हैं, जो उत्तर प्रदेश पुलिस की सन्देहास्पद भूमिका पर सवाल उठाती है? इन सारे सवालों का जवाब हम मज़दूर और मेहनतकश जानते हैं, जब मुद्दई और मुंसिफ़ ख़ुद मालिकों और प्रबन्धन के इशारे पर काम करने वाली उत्तर प्रदेश सरकार और उसकी पुलिस ही हो, तो आप किस प्रकार की निष्पक्ष जाँच और कार्रवाई की उम्मीद कर सकते हैं?

इन सभी तथ्यों से सवाल उठता है कि जब मज़दूरों का स्वत:स्फूर्त आन्दोलन नोएडा में शुरू हुआ तो कथित तौर पर उसे कम्पनियों के मालिकान और प्रबन्धन के इशारों पर तुड़वाने के लिए योगी सरकार और उसकी उत्तर प्रदेश पुलिस का 'टूलकिट', या 'टेम्पलेट' क्या था?

सामने आ रहे तथ्यों और ख़बरों से ऐसा प्रतीत होता है कि यह वही साज़िश थी जो पुलिस शान्तिपूर्ण तरीक़े से अपनी हड़ताल चला रहे मज़दूरों के संघर्ष को तोड़ने और कुचलने के लिए हमेशा ही अपनाती रही है, चाहे वे 1886 में शिकागो के मई दिवस का आन्दोलन रहा हो या आज नोएडा के मज़दूरों का आन्दोलन हो। जो हुआ है, उसके पहले जो हुआ था, उसे समझना यहाँ ज़रूरी है।

कुछ ही समय पहले योगी सरकार ने नोएडा में निवेशकों का सम्मेलन किया था, जिसमें पूँजीपतियों को यह कहकर निवेश करने के लिए लुभाया गया था कि नोएडा, ग्रेटर नोएडा व ग़ाज़ियाबाद में "औद्योगिक शान्ति" बनायी जायेगी, पूँजीपतियों को "धंधा करने की पूरी सहूलियत" हासिल होगी। इसका अर्थ साफ़ है: नोएडा में एक दशक से भी ज़्यादा समय से न्यूनतम मज़दूरी नहीं बढ़ायी गयी थी, ट्रेड यूनियनें प्रभावतः दृश्य से अन्तर्धान हो चुकी थीं, मज़दूरों के पास अपनी शिकायतों को दर्ज कराने, अपनी माँगों के लिए संघर्ष करने के तमाम मंच अनुपस्थित थे; नोएडा के श्रम न्यायालय में एक लाख केस लम्बित हैं। यही वह स्थिति है जो पूँजीपतियों से निवेश को आमंत्रित करने के लिए पैदा की गयी है। लेकिन पूँजीपतियों को किये गये योगी सरकार के वायदे नोएडा में मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त हड़ताल के साथ धरे के धरे रह गये। 2027 में उत्तर प्रदेश का विधानसभा चुनाव है। लिहाज़ा, योगी आदित्यनाथ को किसी भी क़ीमत पर यह हड़ताल कुचलनी थी ताकि वह अगले साल के चुनावों में पूँजीपतियों की लॉबी का आर्थिक समर्थन प्राप्त कर सके, करोड़ों रुपये के चन्दे हासिल कर सके। **भाजपा साम्प्रदायिकता, पूँजी की शक्ति और राज्यसत्ता के सभी उपकरणों में आन्तरिक घुसपैठ के बूते ही चुनावों को चुरा रही है। इन तीनों कारकों के मिश्रण के बिना उत्तर प्रदेश के चुनावों में भाजपा की स्थिति ख़राब भी हो सकती है। ऐसे में, पूँजीपतियों के सामने एक रिपोर्ट कार्ड पेश करना उत्तर प्रदेश के भाजपा नेतृत्व व सरकार के लिए ज़रूरी था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसीलिए हड़ताल को जल्द से जल्द तोड़ना आवश्यक था।**

अब तक आये सबूतों और रपटों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि इसी के लिए मज़दूरों द्वारा शान्तिपूर्ण तरीक़े से जारी हड़ताल में हिंसा भड़कायी गयी इसमें उत्तर प्रदेश पुलिस की भूमिका पर अब गहरे सवालिया निशान खड़े हो चुके हैं और जिनकी उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच से ही सच्चाई सामने आ सकती है। एक बार हड़तालों या मज़दूर आन्दोलनों में इस प्रकार हिंसा भड़का दी जाती है, तो उसका दमन करने और उस दमन को जनता के समक्ष वैध ठहराने का उपकरण सरकारों को मिल जाता है।

मज़दूरों के व्हाट्सऐप ग्रुप में खुद को एक डिप्टी कमिश्नर का ड्राइवर बताने वाला व्यक्ति और एक सबइंस्पेक्टर कर ही क्या रहे थे? वे हिंसा भड़काने वाले उकसाऊ सन्देश क्यों डाल रहे थे? इस पर उत्तर प्रदेश पुलिस एक महीने तक चुप्पी क्यों साधे रही? उत्तर प्रदेश की पूँजीपतियों के संघों, उत्तर प्रदेश प्रशासन और पुलिस को यह पता था कि अगर मज़दूरों की हड़ताल कुछ भी दिन शान्तिपूर्ण तरीक़े से चल गयी, तो उनके लिए मुश्किल हो जायेगी और उन्हें मज़दूरों की माँगों के सामने झुकना भी पड़ सकता है। इसलिए 8 अप्रैल को मज़दूरों की हड़ताल शुरू होने के समय से ही पुलिस ने कभी मज़दूरों के नेताओं को भीड़ के बीच से पकड़ने की कोशिश की, तो कभी बिना किसी उकसावे के मज़दूरों पर बल प्रयोग किया। लेकिन रूपेश राय, आदित्य आनन्द, सृष्टि, आकृति, मनीषा जैसे श्रम अधिकार व सामाजिक कार्यकर्ता सतत प्रयासरत थे कि मज़दूर अपनी हड़ताल और आन्दोलन को शान्तिपूर्ण तरीके से जारी रखें। रूपेश, आदित्य आनन्द और आकृति चौधरी के ऐसे वीडियो भी सोशल मीडिया व सार्वजनिक डोमेन में मौजूद हैं।

ग़ौरतलब है कि जब तक 11 अप्रैल की गिरफ्तारियाँ नहीं हुईं तब तक नोएडा में किसी एक जगह भी कोई हिंसक वारदात नहीं हुई और हड़ताल शान्तिपूर्ण तरीक़े से जारी रही। और जब आन्दोलन को अनुशासन, व्यवस्था और संगठन के रास्ते पर बनाये रखने वाले ये श्रम अधिकार कार्यकर्ता रास्ते से हटा दिये गये और गिरफ्तार कर लिये गये, तब जाकर 13 अप्रैल को पहली बार हिंसक वारदात मदरसन कम्पनी के सामने हुई। यह किस प्रकार से पुलिस के उकसावे के कारण हुई, उसका हम पहले ही ज़िक्र कर चुके हैं। अब तक आये सबूतों और प्रमाणों से एक 'टूलकिट' उभरता प्रतीत होता है। नतीजतन, समूचे प्रकरण की उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच होना अपरिहार्य है जिससे कि हिंसा भड़काने के असली दोषियों की पहचान हो सके।

पुलिस ने अब तक गिरफ्तार कार्यकर्ताओं की ज़मानत की अर्जियों का विरोध करते हुए अदालत में जो लिखित आवेदन किये हैं, अगर कोई उसे पढ़ ले तो इस पुलिस प्रशासन की मानसिक स्थिति पर उसे हँसी भी आ सकती है। एक आवेदन में लिखा है कि 13 अप्रैल को रूपेश, आदित्य और हिमांशु के साथ मदरसन कम्पनी के बाहर मज़दूरों को हिंसा के लिए भड़का रहे थे और सत्यम वर्मा ऑनलाइन मज़दूरों को भड़का रहे थे! लेकिन 13 अप्रैल को तो सत्यम वर्मा से लखनऊ के हसनगंज थाने में उत्तर प्रदेश पुलिस पूछताछ कर रही थी और उनका फ़ोन ज़ब्त कर लिया गया था! तो फिर वे नोएडा में कैसे हो सकते थे या फिर वे ऑनलाइन कोई भड़काऊ सन्देश कैसे भेज सकते थे? और रूपेश, सृष्टि, आकृति व मनीषा 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी नोएडा के बाहर कैसे हो सकते थे, वे तो 11 अप्रैल से पुलिस हिरासत और फिर जेल में हैं? और हिमांशु 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के बाहर था तो पुलिस उसकी लोकेशन के विवरण साझा क्यों नहीं कर रही है? यह है पुलिस की जाँच!

स्पष्ट है, उत्तर प्रदेश सरकार का पुलिस प्रशासन पूँजीवादी व्यवस्था का वह डेढ़ सौ साल पुराना 'टूलकिट' ही लागू कर रहा है, जो इसके अमेरिकी पुरखों ने 1886 में मई दिवस के शहीदों एंजेल, स्पाइस, फिशर और पार्संस को फँसाने के लिए लागू किया था।

डेढ़ सौ साल में ये लोग कुछ नया भी ईजाद नहीं कर पाये हैं! तब अमेरिकी पुलिस ने हेमार्केट में खुद के ही दलालों द्वारा बम फिंकवाकर बेगुनाह मज़दूर नेताओं को फँसाया था ताकि मज़दूरों के संघर्ष को तोड़ा जा सके।

बाद में अमेरिकी पूँजीवादी अदालत तक को मानना पड़ा था कि मई दिवस के शहीद बेगुनाह थे। बाद में इसे मानने में पूँजीवाद को कोई ख़ास नुक़सान भी नहीं था। आज तक दुनिया भर में पूँजीवादी व्यवस्था की पुलिस मज़दूरों और मज़दूर नेताओं के ख़िलाफ़ इन्हीं तौर-तरीक़ों का इस्तेमाल करती है। **लेकिन मज़दूरों का संघर्ष न तो तब रुका था न अब रुका है और न ही तब तक रुकेगा जब तक इंसान द्वारा इंसान का शोषण जारी रहेगा।**

देश भर में इंसाफ़पसन्द लोगों और जनता ने पुलिस के इस 'टूलकिट' को समझ लिया है। देश के अलग-अलग हिस्सों में नोएडा आन्दोलन के गिरफ्तार मज़दूरों, लेबर कार्यकर्ताओं, उनके समर्थन में उतरे बुद्धिजीवियों, छात्र कार्यकर्ताओं की रिहाई के लिए प्रदर्शन, प्रेस सम्मेलन, आदि हो रहे हैं। उत्तर प्रदेश पुलिस की संदेहास्पद भूमिका समूची जनता के सामने बेनक़ाब हो रही है। यह समूची पूँजीवादी व्यवस्था और मौजूदा फ़ासीवादी शासन को भी बेनक़ाब कर रहा है।

जनता इन चीज़ों को भूलती नहीं है। इस प्रकार का दमन न तो जनता के संघर्षों को कभी दबा पाया है, न ही दबा पायेगा। इस संघर्ष में तात्कालिक तौर पर कभी ज्वार तो कभी भाटा आते रहेंगे। लेकिन श्रम और पूँजी का अन्तरविरोध जब तक बना रहेगा, जब तक पूँजीवादी व्यवस्था बनी रहेगी, जब तक धन्नासेठों के हाथों मेहनतकशों का शोषण जारी रहेगा, तब तक यह संघर्ष भी जारी रहेगा। यह इतिहास का नियम है, कोई माने या न माने, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता।

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षणमाला – 33

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त (खण्ड-2)

अध्याय – 6

पूँजी का टर्नओवर (जारी)

● अभिनव

अचल व चल पूँजी (जारी)

जैसा कि हमने देखा, चल और अचल पूँजी का अन्तर उनकी प्राकृतिक विशिष्टताओं या उनके गतिमान होने या एक स्थान पर स्थिर होने से नहीं निर्धारित होता है। न ही उनकी अन्तिम तौर पर पहचान इस बात से होती है कि उनके तत्व भौतिक तौर पर माल में स्थानान्तरित होते हैं या नहीं क्योंकि अचल पूँजी के मामले में कुछ ऐसे आपवादिक तत्व हैं जो माल में भौतिक तौर पर स्थानान्तरित होते हैं (मसलन, खाद) और चल पूँजी के मामले में कुछ ऐसे आपवादिक तत्व हैं, जो माल में भौतिक तौर पर स्थानान्तरित नहीं होते (मसलन, सहायक सामग्रियाँ जैसे ग्रीस, ल्यूब्रिकेण्ट, आदि)। तो फिर चल और अचल पूँजी के बीच अन्तर करने का आधारभूत पैमाना क्या है? *जैसा कि हमने ऊपर ज़िक्र किया है, इनके बीच अन्तर मूलत: इस आधार पर किया जाता है कि इनके तत्व अपने मूल्य को माल के मूल्य में किस प्रकार स्थानान्तरित करते हैं: एक उत्पादन चक्र में या फिर कई उत्पादन चक्रों में।*

चल पूँजी वह होती है जो उन तत्वों पर लगती है जो अपना मूल्य एक उत्पादन-चक्र में यानी एक ही बार में उत्पादित होने वाले माल में स्थानान्तरित कर देती है। आम तौर पर, इसके अधिकांश तत्व भौतिक तौर पर भी माल में स्थानान्तरित हो जाते हैं, हालाँकि इसके कुछ अपवाद होते हैं, जैसा कि हमने ऊपर ज़िक्र किया है। इसका एक महत्वपूर्ण निहितार्थ यह हुआ कि चल पूँजी के तत्वों को हर उत्पादन-चक्र के समापन के साथ भौतिक तौर पर पुनर्नवीकृत करना होता है।

जैसा कि सहज ही समझा जा सकता है, चल पूँजी में मज़दूरी और कच्चे माल व सहायक सामग्रियों पर होने वाला ख़र्च शामिल होता है और श्रमशक्ति और कच्चे माल व सहायक सामग्रियाँ इसके भौतिक तत्व होते हैं। ये वे तत्व हैं जो अपना मूल्य एक उत्पादन-चक्र में ही माल के मूल्य में स्थानान्तरित कर देते हैं और, ग्रीस, तेल, ल्यूब्रिकेण्ट आदि जैसी सहायक सामग्रियों के अपवाद को छोड़ दें, तो ये भौतिक तौर पर, यानी एक उपयोग-मूल्य के तौर पर भी, उत्पादित माल में स्थानान्तरित हो जाते हैं। यानी, उनका मूल्य पूर्ण रूप में संचरित होता है और हर उत्पादन-चक्र के बाद उनका पुनर्नवीकरण करना आवश्यक होता है। पूँजीपति के हाथों में चल पूँजी को पुनर्नवीकृत करने हेतु मुद्रा-पूँजी का मौजूद होना उत्पादन को जारी रखने की पूर्वशर्त होता है। यानी, कच्चे माल और मज़दूरी पर होने वाले ख़र्च के लिए उसके हाथ में मुद्रा-पूँजी हर उत्पादन-चक्र की शुरुआत में मौजूद होनी चाहिए। ज़ाहिर है कि चल पूँजी के कई टर्नओवर अचल पूँजी के एक टर्नओवर में समाये होते हैं।

जैसा कि हम पहले भी ज़िक्र कर चुके हैं, चल पूँजी और अचल पूँजी का अन्तर केवल उद्यमी उत्पादक पूँजी के लिए ही मायने रखता है। वाणिज्यिक या सूदखोर पूँजी के लिए, यानी उस पूँजी के लिए जो किसी उद्यमी (औद्योगिक या खेतिहर) उत्पादक उपक्रम में नहीं लगी है, यह अन्तर कोई मायने नहीं रखता है। वजह यह है कि यहाँ अन्तर का आधार ही यह है कि उत्पादन के विभिन्न तत्व अपने मूल्य को उत्पादित माल में किस तरीक़े से स्थानान्तरित करते हैं। एक व्यापारी केवल उत्पादित माल बेचता है, वह माल के उत्पादन में नहीं लगा होता है। उसकी कुल पूँजी में माल-पूँजी और मुद्रा-पूँजी होती है, लेकिन उसकी पूँजी कभी उत्पादक-पूँजी का रूप नहीं लेती है। वहीं एक सूदखोर केवल मुद्रा-पूँजी रखता है। वह उसे एक निश्चित समय के लिए ऋण लेने वाले को देता है, जिसे ऋणी व्यक्ति उस निश्चित समय के समाप्त होने के बाद ब्याज के साथ वापस करता है। निश्चित तौर पर, यह ब्याज वह ऋणी व्यक्ति विनियोजित किये गये बेशी मूल्य में से देता है (अगर वह पूँजीपति या भूस्वामी है) या फिर वह ऋणी व्यक्ति यह ब्याज अपनी मज़दूरी या वेतन से देता है (अगर वह उजरती श्रमिक है)। *लेकिन इतना स्पष्ट है कि व्यापारी या सूदखोर के लिए चल व अचल पूँजी का अन्तर ही अप्रासंगिक है।*

इस बात को न समझ पाने के कारण चल और अचल पूँजी के विषय में क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्रियों ने कई ग़लतियाँ कीं। मसलन, ऐडम स्मिथ चल पूँजी (circulating capital) को संचरणशील पूँजी (capital in circulation), यानी वे तत्व जो एक हाथ से दूसरे हाथ में बिक्री के द्वारा स्थानान्तरित होते हैं, से गड्ड-मड्ड कर बैठे। इस भ्रम के आधार पर स्मिथ ने यह दावा किया कि व्यापारिक पूँजीपति की समस्त पूँजी चल पूँजी है क्योंकि उसके सभी तत्व बिक्री के लिए होते हैं और इसलिए उसकी समूची पूँजी का मूल्य संचरित होता है। दूसरी ओर, स्मिथ के लिए अचल पूँजी वह पूँजी है जिसके तत्व न सिर्फ़ भौतिक तौर पर संचरित नहीं होते, बल्कि जिसका मूल्य भी संचरित नहीं होता! मार्क्स ने इस ग़लती की आलोचना करते हुए कहा कि अचल पूँजी के तत्व मसलन मशीनें, यन्त्र व उपकरण आदि भी बिकते हैं, यानी संचरित होते हैं, क्योंकि उनका उत्पादन करने वाला पूँजीपति अन्य पूँजीपतियों को इन्हें बेचता है। इसके अलावा, अचल पूँजी का मूल्य भी टुकड़ों-टुकड़ों में उत्पादित मालों की श्रृंखला में स्थानान्तरित होता है, हालाँकि उसके तत्व भौतिक रूप में उत्पादित माल में रूपान्तरित नहीं होते। *इस रूप में कोई भी पूँजी ऐसी नहीं होती जिसका मूल्य संचरित ही न हो।* स्मिथ उपयोग-मूल्य और मूल्य को भी भ्रमित कर बैठते हैं और इसीलिए यह दावा करते हैं कि अचल पूँजी संचरित ही नहीं होती क्योंकि उसके तत्व भौतिक तौर पर उत्पादित माल में स्थानान्तरित नहीं होते। साथ ही, मार्क्स बताते हैं कि चल पूँजी के तत्व भी भौतिक तौर पर तब तक संचरित नहीं होते जब तक कि वे उत्पादन की प्रक्रिया में संलग्न होते हैं और इस मायने में चल पूँजी के तत्व भी तब तक "अचल" या फिक्स्ड ही रहते हैं।

स्मिथ के अलावा, क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र के शिखर-पुरुष रिकार्डो से भी चल व अचल पूँजी के अन्तर के सन्दर्भ में गम्भीर ग़लतियाँ हुईं, जिन्हें मार्क्स ने दुरुस्त किया। एक तरफ़ रिकार्डो स्थिर पूँजी के अचल पूँजी वाले तत्वों में केवल मशीनों व श्रम के अन्य उपकरणों को शामिल करते हैं और कच्चे माल को इसमें शामिल नहीं करते, वहीं दूसरी तरफ़ वह चल पूँजी में भी कच्चे मालों को शामिल नहीं करते। नतीजतन, कच्चा माल ही इस विषय में उनकी चर्चा से अन्तर्धान हो जाता है। इसके अलावा, रिकार्डो चल पूँजी में केवल मज़दूरी को शामिल करते हैं और चल पूँजी को परिवर्तनशील पूँजी से गड्ड-मड्ड कर बैठते हैं। नतीजतन यहाँ भी उनके विभाजन से कच्चा माल ग़ायब ही हो जाता है। *चूँकि रिकार्डो एकमात्र श्रमशक्ति को चल पूँजी का तत्व बताते हैं और इस प्रकार चल पूँजी को परिवर्तनशील पूँजी के साथ गड्ड-मड्ड करते हैं, इसलिए वे मूल्य व बेशी मूल्य के उत्पादन की प्रक्रिया की भी सही व्याख्या नहीं कर पाते क्योंकि चल पूँजी का रिश्ता केवल इस बात से होता है कि उसके तत्व किस प्रक्रिया में अपने मूल्य को माल में स्थानान्तरित करते हैं, न कि इस बात से कि मूल्य व बेशी मूल्य का उत्पादन कैसे होता है।* इस प्रकार रिकार्डो के विमर्श में श्रम का मूल्य उत्पादित करने वाला चरित्र ग़ायब हो जाता है।

मार्क्स बताते हैं कि इस मामले में स्मिथ और रिकार्डो से पहले आये फ़िज़ियोक्रैट राजनीतिक अर्थशास्त्री ज्यादा विकसित थे क्योंकि उन्होंने चल व अचल पूँजी की चर्चा केवल इस सन्दर्भ में की कि उत्पादन के विभिन्न तत्व किस रूप में अपने मूल्य को उत्पाद में स्थानान्तरित करते हैं और किस रूप में उनका पुनरुत्पादन करना आवश्यक होता है।

मार्क्स अचल पूँजी के बारे में लिखते हैं:

"पूँजी के एक हिस्से का निवेश स्थिर पूँजी के रूप में, यानी उत्पादन के साधनों पर, किया जाता है जो तब तक श्रम-प्रक्रिया के कारकों के रूप में काम करते हैं जब तक वे अपने उस स्वतन्त्र उपयोग-रूप को बनाये रखते हैं, जिसमें वे श्रम-प्रक्रिया में प्रवेश करते हैं। उत्पादित उत्पाद, और इसलिए जिस हद तक वे उत्पाद में रूपान्तरित हो जाते हैं उस हद तक उसके निर्माण में लगे तत्व भी, उत्पादन-प्रक्रिया से बाहर चले जाते हैं और उत्पादन के क्षेत्र से एक माल के रूप में संचरण के क्षेत्र में चले जाते हैं। दूसरी ओर, श्रम के उपकरण कभी भी उत्पादन-प्रक्रिया में प्रवेश करने के बाद उससे बाहर नहीं जाते। उनका विशिष्ट प्रकार्य ही उन्हें इसी क्षेत्र में सीमित रखता है। निवेश किये गये पूँजी-मूल्य का एक हिस्सा इसी रूप में अचल रहता है, जो कि इस समूची प्रक्रिया में श्रम के उपकरणों के प्रकार्य से निर्धारित होता है। जैसे-जैसे श्रम का कोई उपकरण अपना काम करता है और ख़र्च होता जाता है, उसके मूल्य का एक हिस्सा माल में स्थानान्तरित हो जाता है, जबकि दूसरा हिस्सा श्रम के उपकरणों में और इस प्रकार उत्पादन-प्रक्रिया में ही अचल रूप में मौजूद रहता है। इस प्रकार से अचल या असंचरित मूल्य तब तक धीरे-धीरे कम होता जाता है, जब तक कि श्रम का उपकरण पूरी तरह से ख़र्च हो जाये और इस प्रकार अपने मूल्य को लम्बे या छोटे दौर में बार-बार दुहराई जाने वाली श्रम-प्रक्रियाओं की श्रृंखला से उत्पादित होने वाले उत्पादों के ढेर पर वितरित कर दे। जब तक श्रम के उपकरण प्रभावी बने रहते हैं और इसलिए उन्हें उसी प्रकार के नये उपकरणों से बदलना नहीं पड़ता, कुछ स्थिर पूँजी मूल्य उनमें अचल रूप में मौजूद होता है, जबकि मूल्य का एक दूसरा हिस्सा, जो कि मूलत: अचल था, उत्पाद में स्थानान्तरित हो जाता है और इस प्रकार मालों के स्टॉक के एक अंग के रूप में संचरित होता है।" (*वही*, पृ. 237-38, *अनुवाद हमारा*)

मार्क्स बताते हैं कि अचल पूँजी के तत्व का मूल्य भी पूँजी के सभी तत्वों के मूल्य समान संचरित होता है, हालाँकि यह प्रक्रिया चल पूँजी के तत्वों से अलग तरीक़े से होती है। उनका चल पूँजी से अन्तर सिर्फ़ इतना है कि वे एक लम्बी प्रक्रिया में टुकड़े-टुकड़े में अपने मूल्य को संचरित करते हैं। मार्क्स लिखते हैं:

"पूँजी-मूल्य का वह हिस्सा जो श्रम के उपकरणों में फिक्स्ड रहता है, वह भी किसी भी अन्य हिस्से के रूप में संचरित होता है। जैसा कि हमने देखा है, समूचा पूँजी-मूल्य सतत् संचरण में रहता है, और इसलिए इस अर्थ में, समस्त पूँजी ही चल पूँजी है। लेकिन अभी तक हमने पूँजी के जिस हिस्से पर विचार किया है उसका संचरण विशिष्ट प्रकार का है। पहली बात तो यह कि यह अपने उपयोग-रूप में संचरित नहीं होता। बल्कि यह इसका मूल्य है जो संचरित होता है, और यह टुकड़ों-टुकड़ों में धीरे-धीरे होता है... इसके मूल्य का एक हिस्सा तब तक फिक्स्ड ही रहता है जब तक यह काम करना जारी रखता है, और इस प्रकार उन मालों से भिन्न बना रहता है जिनके उत्पादन में यह सहायता करता है। स्थिर पूँजी के इस हिस्से की यह विशिष्टता ही इसे अचल पूँजी का रूप देती है। उत्पादन-प्रक्रिया में निवेशित पूँजी के अन्य सभी भौतिक संघटक तत्व इस विशिष्ट रूप के विपरीत चल या तरल पूँजी का अंग होते हैं।" (*वही*, पृ. 238, *अनुवाद हमारा*)

चूँकि चल पूँजी के सभी तत्व एक उत्पादन-प्रक्रिया में ही अपने मूल्य को उत्पादित माल में स्थानान्तरित कर देते हैं, इसलिए हर उत्पादन-चक्र के बाद उनका पुनर्नवीकरण आवश्यक होता है, वरना उत्पादन-प्रक्रिया की

(पेज 16 पर जारी)

मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के सिद्धान्त

(पेज 15 से आगे)

निरन्तरता को क़ायम नहीं रखा जा सकता। इसमें श्रमशक्ति, कच्चा माल और सहायक सामग्री शामिल होते हैं। सहायक सामग्री के विषय में एक अपवाद केवल यही है कि वह भौतिक तौर पर उत्पाद में स्थानान्तरित नहीं होती है, बल्कि केवल उसका मूल्य एक उत्पादन-चक्र में उत्पाद में स्थानान्तरित हो जाता है। मार्क्स लिखते हैं:

"उत्पादन-प्रक्रिया में प्रवेश करने वाली तरल पूँजी अपने समूचे मूल्य को उत्पाद में स्थानान्तरित कर देती है, और इसलिए अगर उत्पादन-प्रक्रिया को बिना किसी बाधा के चलाना है तो उत्पाद की बिक्री के ज़रिये लगातार उसको पुनर्नवीकृत करना अनिवार्य होता है।" (*वही*, पृ. 261, *अनुवाद हमारा*)

चल व अचल पूँजी के इस विभाजन में बुनियादी बात है इस बात पर विचार करना कि उत्पादन के विभिन्न तत्व अपना मूल्य किस तरीक़े से उत्पादित माल में स्थानान्तरित करते हैं। उनका भौतिक तौर पर उत्पादन की प्रक्रिया में फिक्स्ड होना अपने आप में यह तय करने का बुनियादी तत्व नहीं है कि वे चल पूँजी हैं या अचल पूँजी। अचल पूँजी कई उत्पादन-चक्रों तक उत्पादन की प्रक्रिया में फिक्स्ड रहती है। लेकिन चल पूँजी भी एक उत्पादन-चक्र के दौरान उत्पादन की प्रक्रिया में फिक्स्ड ही रहती है। मार्क्स लिखते हैं:

"तरल पूँजी के तत्व भी उत्पादन-प्रकिया में उसी स्थायी रूप में फिक्स्ड होते हैं – अगर उसे निरन्तरतापूर्ण होना है – जितना कि अचल पूँजी के तत्व होते हैं। लेकिन जहाँ चल पूँजी के तत्व जो इस प्रकार फिक्स्ड होते हैं उन्हें भौतिक रूप में लगातार पुनर्नवीकृत किया जाता है (अगर वे उत्पादन के साधन हैं तो उसी प्रकार के नये तत्वों द्वारा; अगर वह श्रमशक्ति है तो बार-बार दुहराई जाने वाली ख़रीद के द्वारा), वहीं दूसरी ओर अचल पूँजी के तत्व जब तक काम करना जारी रखते हैं, उनका पुनर्नवीकरण नहीं किया जाता और न ही उनकी ख़रीद को बार-बार दुहराया जाता है। कच्चा माल व सहायक सामग्री लगातार उत्पादन-प्रक्रिया में मौजूद होते हैं, लेकिन वे हमेशा पुरानी क़िस्म की नयी चीज़ें होते हैं, क्योंकि इसी क़िस्म की पुरानी चीज़ें उत्पादित माल के निर्माण में ख़र्च हो जाती हैं। उतनी ही निरन्तरता के साथ श्रमशक्ति भी उत्पादन-प्रक्रिया में मौजूद होती है, लेकिन बार-बार दुहराई जाने वाली अपनी ख़रीद के साथ, और अक्सर नये व्यक्तियों के साथ। लेकिन वही इमारतें, मशीनें, आदि इसी बार-बार दुहराई जाने वाली उत्पादन प्रक्रिया में काम करना जारी रखते हैं, जबकि तरल पूँजी का टर्न ओवर बार-बार होता रहता है।" (*वही*, पृ. 248, *अनुवाद हमारा*)

यहाँ पहुँचकर मार्क्स चल और अचल पूँजी के अन्तर पर अपनी चर्चा को विराम देते हैं। इसके बाद, मार्क्स पूँजी के सकल टर्नओवर (aggregate turnover of capital) की चर्चा पर आते हैं, जो पूँजीवादी उत्पादन पद्धति के विश्लेषण में पुनरुत्पादन से जुड़ा एक अहम प्रश्न है।

मार्क्स इससे पहले *पूँजी* के दूसरे खण्ड में एडम स्मिथ और रिकार्डो की चल व अचल पूँजी के बारे में समझ की विस्तृत आलोचना पेश करते हैं। उसके कुछ बिन्दुओं पर हमने संक्षेप में चर्चा की है। हमने अपने लिए जो तात्कालिक कार्यभार तय किया है, उसके अन्तर्गत हम मार्क्स द्वारा रखी गयी इन आलोचनाओं के विस्तार में नहीं जा सकते। क्लासिकीय बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र की विभिन्न मसलों पर और आम तौर पर उसकी पहुँच और पद्धति के सवाल पर मार्क्स की क्रान्तिकारी वैज्ञानिक आलोचना के विषय में हम कभी अलग से विस्तार से लिखेंगे। लेकिन फ़िलहाल हम मार्क्स द्वारा पूँजी के सकल टर्नओवर पर विस्तृत चर्चा करेंगे, जिससे कि पूँजीवादी व्यवस्था में पुनरुत्पादन के प्रश्न से जुड़ी समस्याओं पर अपनी चर्चा को आगे बढ़ा सकें।

(अध्याय 6 अगले अंक में जारी)

हिन्दू-मुसलमान एकता को बुलन्द कर 'नये कम्पनी राज' के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाओ!!

(पेज 3 से आगे)

प्रतिरोध-युद्ध था और नये भारत का पहला स्वाधीनता-संग्राम भी। लेकिन इसका मुख्य पहलू पुराने भारत के प्रतिरोध-संघर्ष का ही था।" (दीपायन बोस, 1857, आरम्भिक देशभक्ति और प्रगतिशीलता) इस संग्राम ने ग़दर पार्टी, हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन, भगतसिंह और उनके साथियों से लेकर नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस को प्रेरणा दी थी।

इस प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद अंग्रेज़ों ने 1858 को भारत को रानी के ताज के मातहत कर कम्पनी राज को अंग्रेज़ी राज्यसत्ता की हुकूमत में तब्दील कर दिया। भारतीय जन के विद्रोह से डरकर अंग्रेज़ों ने सैन्य दमन के ताने-बाने को और भी मज़बूत कर दिया और दूसरी ओर औपनिवेशिक सत्ता की नौकरशाही व सिविल सेवाओं को भरने के लिए अंग्रेज़ी मानस वाले भारतीय क्लर्क तैयार करने हेतु नयी शिक्षा व्यवस्था भी आरोपित की। इस संघर्ष के बाद से ही अंग्रेज़ी हुक्मरानों ने भारतीय जनता की साझा लड़ाई को कमज़ोर करने के मक़सद से 'फूट डालो और राज करो' की नीति अपनायी और हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा भड़काना शुरू किया और धार्मिक कट्टरपंथी संगठनों को बढ़ावा देना शुरू किया। भारतीय समाज में अभी तक जनता के बीच कभी-कभार छोटे-मोटे स्थानीय स्तर के धार्मिक झगड़े हुआ करते थे। कई बादशाहों और राजाओं ने अपनी तात्कालिक राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कभी-कभार किसी एक धर्म का इस्तेमाल किया लेकिन वे साम्प्रदायिक नहीं थे।

आम जनता के स्तर पर व्यापक तौर पर लोगों के बीच साम्प्रदायिक नफ़रत के बीज बोने का काम सबसे पहले अंग्रेज़ों ने अपनी राजकीय मशीनरी के ज़रिये किया। यह आम धार्मिक झगड़े से इस रूप में अलग था कि पहली बार राज्य मशीनरी के व्यापक ढाँचे के ज़रिये साम्प्रदायिक आम सहमति का निर्माण किया गया। साम्प्रदायिकता के ज़हर ने 1857 में कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाली हिन्दू-मुसलमान आबादी के बीच दरारें डाल दीं। उन्नीसवीं सदी के आख़िरी वर्षों और विशेष तौर पर बीसवीं सदी के शुरुआती दौर से हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे साम्प्रदायिक व साम्प्रदायिक फ़ासीवादी संगठनों ने इसमें अंग्रेज़ी सत्ता का पूरा साथ दिया। मुस्लिम लीग सरीखे संगठन भी इस साम्प्रदायिक आग में जनता को झोंकने में योगदान करते रहे। गणेश शंकर विद्यार्थी ने इसपर ही लिखा था कि "एक तरफ़ जहाँ जनआन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, वहीं, उनके साथ-साथ जातिगत और साम्प्रदायिक आन्दोलनों को भी जान-बूझकर शुरू किया गया क्योंकि ये आन्दोलन न तो अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ थे, न किसी वर्ग के, बल्कि ये दूसरी जातियों के ख़िलाफ़ थे।" अंग्रेज़ों की इस 'फूट डालो और राज करो' यानी 'डिवाइड ऐण्ड रूल' की नीति से ही आज का भारतीय शासक वर्ग और उनके वर्तमान प्रमुख नुमाइन्दे यानी भाजपा-आरएसएस के लोग सीख रहे हैं और उसे अपनी फ़ासीवादी राजनीति का अंग बना रहे हैं। यही कारण है कि आर.एस.एस. ने देश की आज़ादी की लड़ाई में कभी कोई हिस्सा नहीं लिया।

अंग्रेज़ों की इस नीति को स्वतंत्रता आंदोलन से प्रतिरोध भी मिला। भगतसिंह और उनके साथियों व अन्य क्रान्तिकारियों और स्वतन्त्रता संग्रामियों ने साम्प्रदायिक शक्तियों के ख़िलाफ़ मोर्चा खोल दिया। गणेश शंकर विद्यार्थी हिन्दू-मुसलमान एकता का पैग़ाम देते एक साम्प्रदायिक दंगे को रोकने के प्रयास में शहीद हो गये। राहुल सांकृत्यायन, प्रेमचन्द, राधामोहन गोकुलजी से लेकर सैकड़ों स्वतंत्रता संग्रामियों व जनपक्षधर बुद्धिजीवियों व लेखकों ने हिन्दू-मुसलमान एकता का पैग़ाम दिया। अंग्रेज़ों को भारतीय जनता के ज़बरदस्त आन्दोलन के आगे घुटने टेककर जब भागना पड़ा, तबतक उन्होंने भारत की धरती पर पली-बढ़ी साम्प्रदायिक शक्तियों को बढ़ाने में इतनी मदद कर दी थी कि हिन्दुस्तान को आज़ादी के वक़्त की बँटवारे का दंश झेलना पड़ा और साम्प्रदायिकता की राजनीति और उसके झण्डाबरदार संगठन एक हद तक अपने को भारतीय समाज में हाशिये पर ही सही, पर स्थापित करने में सफल रहे। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की हमारी जो सबसे बड़ी ताक़त थी हिन्दू-मुसलमान एकता उसे एक हद तक अंग्रेज़ कमज़ोर करने में कामयाब रहे थे। 1857 की विरासत का एक सबसे अहम सबक़ वह हिन्दू-मुसलमान एकता है जिसे भूलना हमारे लिए प्राणान्तक सिद्ध होगा।

नया कम्पनी राज और काले अंग्रेज़ों का शासन

आज हमारा देश गुलाम नहीं है। 1947 हमें राजनीतिक आज़ादी मिल गई। लेकिन इस आज़ादी के बाद भी इस देश में अमीरी और ग़रीबी की भयंकर खाई मौजूद है। महँगाई, बेरोज़गारी, भूख, कुपोषण, अशिक्षा ने देश की बहुसंख्यक जनता का जीवन मुहाल कर दिया है। भगतसिंह ने पहले ही कहा था कि अगर आज़ादी पूँजीपति वर्ग की पार्टी कांग्रेस के ज़रिये मिलेगी तो यही होगा कि गोरे अंग्रेज़ चले जाएँगे और उनकी जगह काले अंग्रेज़ काबिज़ हो जाएँगे। 169 साल बाद जब हम 1857 को याद कर रहे हैं तो अपने जीवन पर निगाह डालने से साफ़ हो जाता है कि हम एक 'नये कम्पनी राज' में जी रहे हैं। 'नये कम्पनी राज' में टाटा, बिड़ला, अम्बानी, अडानी, हिन्दुजा और गोयनका के वर्ग की चाँदी है और इस देश के आम मेहनतकशों के जीवन की बर्बादी है। पक्का रोज़गार नहीं है, कम्पनियों में ठेके पर दस-बारह हज़ार पर खटकर पेट नहीं भरता, जनता के पैसों पर खड़े किये गये सरकारी स्कूल से लेकर सरकारी अस्पताल तक औने-पौने दामों पर पूँजीपतियों को बेचे जा रहे हैं। पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमतें भारी सरकारी टैक्स के चलते आसमान छू रही है। वहीं गैस सिलेण्डर की क़ीमतों ने लोगों को बिलकुल बेबस कर दिया है। ऊपर से एक लम्बे समय से मज़दूरों को बेहद कम मज़दूरी पर खटा कर मालिक अपनी जेबें भर रहे हैं। इस कारण ही इस साल मज़दूरों का गुस्सा सड़कों पर बह निकला और हमारा देश एक हड़ताल-आन्दोलन की लहर से गुज़र रहा है। पानीपत, मानेसर, नोएडा, सूरत, भरूच, बरौनी से लेकर सालेम, फ़रीदाबाद, हरिद्वार, सिडकुल तक मज़दूर जीवनयापन योग्य मज़दूरी, डबल रेट से स्वैच्छिक ओवरटाइम, साप्ताहिक छुट्टी और बेहतर कार्यस्थितियों के लिए संघर्ष कर रहे हैं, जो कि उनकी निहायत वाजिब माँगें हैं।

हमेशा की तरह हड़तालों को कुचलकर सरकार इसका ठीकरा आन्दोलन के नेताओं पर डाल रही है और उन पर साज़िश, पाकिस्तानी लिंक, नक्सलवाद आदि के झूठे आरोप लगा रही है और उनके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रही है। लेकिन फिर भी हड़ताल-आन्दोलन थम नहीं रहा है। ग़रीब किसान महँगे यूरिया, महँगे बीज व महँगे होते अन्य कृषि इनपुट उत्पादों तथा पानी और बिजली की सरकारी बदइन्तज़ामी के चलते बर्बाद हो रहे हैं जबकि सरकार धनी किसानों और कॉरपोरेट कम्पनियों के हित साध रही है। शहर से लेकर गाँव में ग़रीब मज़दूर-मेहनतकश आबादी तबाह-बर्बाद है। इसकी ज़िम्मेदार भाजपा सरकार और समूची पूँजीवादी व्यवस्था है। अपने चुनावी फण्ड में बॉण्ड से लेकर चुनावी ट्रस्टों के ज़रिये पूँजीपति कॉरपोरेट कम्पनियों से चन्दा लेने वाली भाजपा ने लम्बे समय से आर्थिक संकट से कराह रही भारतीय अर्थव्यवस्था का सारा बोझ जनता पर डालकर पूँजीपतियों को सौगातें दी हैं।

इस 'नये कम्पनी राज' को बेरोक-टोक चलाने के लिए भाजपा-आरएसएस ने अंग्रेज़ों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति को नये स्तर पर लागू किया है। देश की जनता बेरोज़गारी, महँगाई, स्कूल-कॉलेज, अस्पताल और आवास जैसे असल मुद्दों के लिए न संघर्ष कर पाये, इसलिए ही फ़ासीवादी हुक्मरानों ने लोगों के बीच ही साम्प्रदायिक नफ़रत के बीज बो दिये हैं। फ़ासीवादी प्रचार तंत्र के व्यापक ताने-बाने और अपने काडर-आधारित ढाँचे के दम पर और गोदी मीडिया का इस्तेमाल कर भाजपा और संघ ने देश की मुस्लिम आबादी को हिन्दू आबादी के काल्पनिक शत्रु के तौर पर खड़ा किया है। 'लव जिहाद', 'लैण्ड जिहाद', 'थूक जिहाद' से लेकर गोरक्षा के ढोंग और मस्जिदों के नीचे मन्दिरों के अवशेष ढूँढ़कर, घुसपैठियों का नक़ली भय दिखाकर फ़ासीवादी शक्तियों ने जनता की जुझारू

(पेज 11 पर जारी)

सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक कार्ल मार्क्स के 208वें जन्मदिवस (5 मई 2026) के अवसर पर

जब तक इंसानों के हाथों इंसानों का शोषण जारी रहेगा, तब तक मार्क्स के क्रान्तिकारी विचार शासक वर्गों को दु:स्वप्न देते रहेंगे

● सुजय

1883 में कार्ल मार्क्स की मृत्यु के बाद से लगभग हर साल पूँजीपति वर्ग और उसके भाड़े के टट्टू और कलमघसीट काग़ज़ गन्दे करते हुए ये ऐलान करते हैं कि समाजवाद की मृत्यु हो गयी, कम्युनिज़्म की मृत्यु हो गयी, मार्क्सवाद का अन्त हो गया। लेकिन मार्क्सवाद और कम्युनिज़्म का दु:स्वप्न उन्हें सताना नहीं छोड़ता है। 1991 में संशोधनवादी सोवियत यूनियन के पतन के बाद से मार्क्सवाद और कम्युनिज़्म के अन्त का शोर और भी अधिक कानफाड़ू हो गया था। पूँजीपति वर्ग का एक भाड़े का कलमघसीट फ्रांसिस फ़ुकोयामा यह घोषणा कर रहा था कि 'इतिहास का अन्त' हो गया क्योंकि अब इतिहास में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं होगा, कम्युनिज़्म की मृत्यु हो गयी है और अब पूँजीवाद अजर और अमर रहेगा। लेकिन उसके इस ऐलान को भी तीन दशक से अधिक का समय बीत चुका है और पूँजीवादी व्यवस्था कोमा में पड़े मरीज़ के समान शैय्या पर पड़ी है। दुनिया में आज भी मज़दूर वर्ग अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है, समाजवाद के लिए लड़ रहा है, मार्क्स और अपने अन्य महान शिक्षकों को याद कर रहा है। अगर मार्क्सवाद की 1991 में ही अन्तिम मृत्यु हो गयी थी, तो उसके बाद बीते 35 वर्षों के दौरान भी हर वर्ष पूँजीपति वर्ग के भाड़े के बुद्धिजीवी और कलमघसीट मार्क्सवाद के विरुद्ध दर्जनों किताबें, लेख आदि क्यों लिखते रहते हैं? उन्हें तो अब शान्ति और सन्तोष के साथ बैठकर आराम फ़रमाना चाहिए! लेकिन मार्क्सवाद के विरुद्ध वे बदस्तूर काग़ज़ काले किये जा रहे हैं! आख़िर उन्हें डर किस बात का है?

यह सच है कि आज मज़दूर वर्ग की ताक़तें बिखराव और हार के एक लम्बे दौर से गुज़र रही हैं। यह सच है कि दुनिया के तमाम देशों में आज कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी मौजूद नहीं है। यह सच है कि मज़दूर वर्ग के बरसों पहले जीते गये आर्थिक अधिकारों पर दुनिया के तमाम देशों में मौजूद प्रतिक्रियावादी पूँजीवादी सत्ताएँ लगातार हमला कर रही हैं और उन्हें छीन रही हैं, मसलन, आठ घण्टे काम का हक़, जीवनयापन योग्य मज़दूरी का हक़, डबल रेट से ओवरटाइम के भुगतान का हक़, आदि। साथ ही, उनके राजनीतिक अधिकारों पर भी हमला किया जा रहा है, मसलन, हड़ताल करने का हक़, यूनियन बनाने का हक़, आदि। भारत में मोदी सरकार के नये लेबर कोड वास्तव में यही कर रहे हैं। लेकिन इसके बावजूद मज़दूर वर्ग ग़ुलामों की तरह इन हमलों के सामने नतमस्तक नहीं है। वह पीठ झुका कर ग़ुलामों के समान कोड़े खाने को तैयार नहीं है। दुनिया के हरेक देश में वह इस बुरी हालत में भी प्रतिरोध कर रहा है, लड़ रहा है। हमारे देश में भी पिछले कुछ महीनों में तमाम स्वत:स्फूर्त मज़दूर संघर्ष व हड़तालें इसी तथ्य की गवाही दे रही हैं।

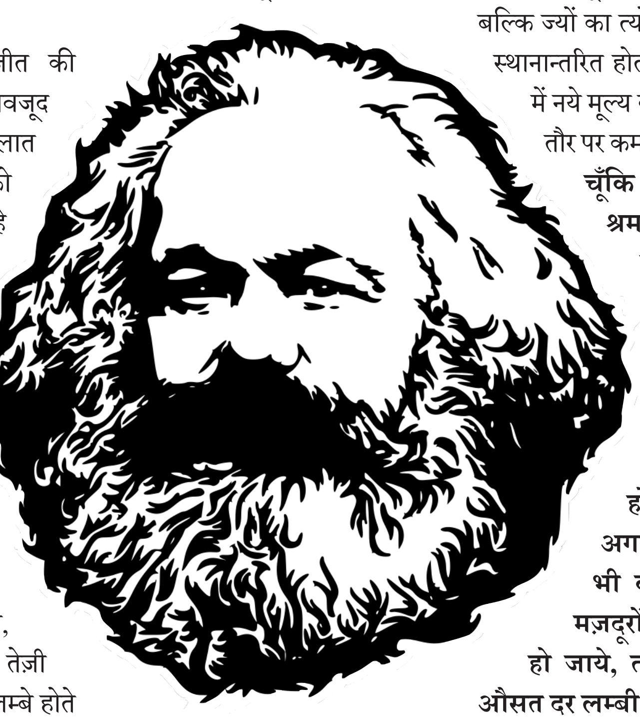

दूसरी तरफ़, अन्तिम जीत की तमाम घोषणाओं के बावजूद पूँजीवाद के मौजूदा हालात मार्क्स की भविष्यवाणियों को शब्दश: सही साबित कर रहे हैं। मार्क्स ने बताया था कि पूँजीवादी व्यवस्था नियमित अन्तराल पर असमाधेय आर्थिक संकटों का शिकार होती रहेगी और इससे बचने का उसके पास कोई रास्ता नहीं है। चक्रीय क्रम से आने वाले ये आर्थिक संकट कालान्तर में लम्बे होते जायेंगे, जबकि पूँजीवादी समृद्धि या तेज़ी के दौर छोटे होते जायेंगे। इन लम्बे होते आर्थिक संकटों के चक्र युद्ध, महामारी, पर्यावरणीय विनाश, बरबादी और तबाही को जन्म देंगे क्योंकि संकट के दौर में राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर पूँजीपति वर्ग की आपसी प्रतिस्पर्द्धा अधिक से अधिक तीव्र रूप धारण करती जायेगी और मुनाफ़े के बचे-खुचे अवसरों के लिए उनमें मार-काट और कुत्ताघसीटी होगी। तबाही और बरबादी के फलस्वरूप आम मेहनतकश जनता सड़कों पर उतरने और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने को बाध्य होगी, अपनी जायज़ माँगों और हक़ों को लेकर लड़ेगी, पूँजीवादी व्यवस्था की घिनौनी असलियत को अपने संघर्षों के सकारात्मक और नकारात्मक अनुभवों से समझती जायेगी। मार्क्स ने बताया था कि पूँजीवाद चक्रीय क्रम में आने वाले इन आर्थिक संकटों व मन्दियों से कभी निजात नहीं पा सकता है। क्यों?

इसलिए क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था मुनाफ़े की अन्धी हवस पर आधारित है और पूँजीपति वर्ग अधिक से अधिक मुनाफ़ा हासिल करने के लिए आपस में प्रतिस्पर्द्धा करता रहता है। वह सर्वहारा वर्ग और आम मेहनतकश जनता के विरुद्ध एकजुट हो जाता है, लेकिन आपस में भी पूँजीपतियों के बीच गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा जारी रहती है। इसी को मार्क्स ने पूँजीपति वर्ग का "शत्रुतापूर्ण भाईचारा" कहा था। आपसी प्रतिस्पर्द्धा में पूँजीपति अपनी लागत को कम-से-कम करना चाहता है, ताकि अपने प्रतिद्वन्द्वी पूँजीपतियों को हरा सके, क्योंकि सारी प्रतियोगिता ही अपने माल को अपनी प्रतिस्पर्द्धी से कम क़ीमत पर बेचने की होती है। इस प्रतिस्पर्द्धा में छोटी पूँजी और मँझोली पूँजी पिछड़ती जाती है और या तो बुरी हालत में अपना अस्तित्व बनाये रखने की कोशिश करती रहती है या समाप्त हो जाती है। होता यह है कि छोटी और मँझोली पूँजियों को बड़ी पूँजियाँ निगलती जाती हैं। नतीजा यह होता है कि पूँजी का संघनन और संकेन्द्रण होता है, यानी पूँजी संचय के ज़रिये अधिक कुशल पूँजियों का आकार बढ़ता है और उनके द्वारा छोटी व मँझोली पूँजियों के निगल लिये जाने के कारण पूँजी पहले से कम हाथों में केन्द्रित होती जाती है।

लेकिन यह करने के लिए पूँजीपतियों को लगातार उन्नत से उन्नत मशीनों व तकनोलॉजी को लगाना पड़ता है, जिससे कि मज़दूरों के श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया जा सके और प्रति इकाई लागत को कम करके क़ीमत प्रतिस्पर्द्धा में अपने प्रतिद्वन्द्वियों को हराया जा सके। नतीजतन, कुल पूँजी निवेश में जीवित श्रम यानी मज़दूरों को रखने पर ख़र्च होने वाली पूँजी की मात्रा घटती जाती है, जबकि मशीनों व यन्त्रों पर यानी मृत श्रम पर लगने वाली पूँजी की मात्रा बढ़ती जाती है। **लेकिन दिक्कत यह है कि नया मूल्य जीवित श्रम द्वारा ही पैदा होता है।** मशीनों के उत्पादन में जो नया मूल्य पैदा होता है, वह उसके बिकने के साथ वास्तवीकृत हो चुका होता है और जब वह मशीन किसी अन्य माल के उत्पादन में लगती है, तो वह उतना ही मूल्य अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में मालों में स्थानान्तरित कर सकती है। वह कोई नया मूल्य उत्पादित होने वाले माल में नहीं जोड़ सकती। यह नया मूल्य उस माल के उत्पादन में लगे मज़दूरों के नये जीवित श्रम से ही पैदा होता है। चूँकि पूँजी का बड़ा हिस्सा उत्पादन के साधनों पर लगता जाता है और सापेक्षिक तौर पर छोटा हिस्सा जीवित श्रम पर ख़र्च होता है, इसलिए माल के मूल्य का बड़ा हिस्सा उत्पादन के साधनों द्वारा स्थानान्तरित मूल्य से निर्मित होता है, जो बढ़ता नहीं है यानी कोई नया मूल्य नहीं पैदा करता है, बल्कि ज्यों का त्यों उत्पाद के मूल्य में स्थानान्तरित होता है। माल के मूल्य में नये मूल्य का हिस्सा सापेक्षिक तौर पर कम होता जाता है। **अब चूँकि यह नये जीवित श्रम द्वारा पैदा हुआ नया मूल्य ही मज़दूरी और मुनाफ़े के रूप में मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग में विभाजित होता है, इसलिए अगर यह कल्पना भी कर ली जाय कि मज़दूरों की मज़दूरी शून्य हो जाये, तो भी मुनाफ़े की औसत दर लम्बी दूरी में गिरती है।**

मुनाफ़े की औसत दर में गिरने की यह दीर्घकालिक प्रवृत्ति ही बार-बार आने वाले और लगातार लम्बे होते आर्थिक संकटों का कारण होते हैं। मुनाफ़े की गिरती दर का नतीजा यह होता है कि मुनाफ़े के बचे-खुचे अवसरों के लिए पूँजीपतियों के बीच प्रतिस्पर्द्धा तीव्रतर होती जाती है। यह राष्ट्रीय स्तर पर होता है और साथ ही अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय पैमाने पर संगठित अलग-अलग देशों के पूँजीपति वर्ग के बीच भी होता है। यही परिघटना सामरिक युद्धों, मुद्रा-युद्धों व व्यापार-युद्धों को जन्म देती है, जैसा कि आज की दुनिया में देखा जा सकता है। साथ ही, यह पर्यावरणीय विनाश और जनता की साझी सम्पत्ति यानी जल, जंगल, ज़मीन के निजीकरण और जनता के विस्थापन की ओर भी जाती है। इसके अलावा, बड़े पैमाने पर मन्दी के दौरान छँटनी और तालाबन्दी भी होती है, मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी को घटाया जाता है, उनका ठेकाकरण कर उन्हें अनौपचारिक क्षेत्र में धकेला जाता है, ताकि उनके सभी श्रम अधिकारों से उन्हें वंचित किया जा सके और उनके मोलभाव की ताक़त को कम किया जा सके। इन सबके ज़रिये पूँजी का अवमूल्यन होता है, उत्पादक शक्तियों का विनाश होता है, और मज़दूरी घटाकर मुनाफ़े की औसत दर को बढ़ाने का प्रयास होता है। इस विनाश के ज़रिये ही पूँजीवाद मुनाफ़े की औसत दर को फिर से बेहतर स्तर पर पुनर्स्थापित कर पाता है।

लेकिन जब भी ऐसा होता है, यानी जब ये युद्ध, पर्यावरणीय विनाश, मज़दूरी में कमी, अनौपचारिकीकरण, निजीकरण आदि होता है, तो इसका विनाशकारी प्रभाव व्यापक मेहनतकश जनता, यानी मज़दूरों, अर्द्धमज़दूरों, छोटे साधारण माल उत्पादकों, कर्मचारियों, छात्रों-युवाओं के जीवन पर पड़ता है। उनका जीवन-स्तर नीचे गिरता है, औसत आय कम होती जाती है, वे बेरोज़गारी और महँगाई का भयंकर प्रकोप झेलते हैं, कार्यस्थितियाँ ख़राब होती जाती हैं, काम के घण्टे बढ़ते जाते हैं। दुनिया भर में मज़दूर-मेहनतकश हमेशा ही इसका प्रतिरोध करते हैं, सड़कों पर उतरते हैं, अपने वाजिब हक़ माँगते हैं, अपने लिए एक इंसानी ज़िन्दगी का हक़ माँगते हैं। अगर ये बिखरे हुए संघर्ष एक सही राजनीतिक लाइन और संगठन का नेतृत्व पाते हैं, आपस में जुड़ते हैं, अपने साझा दुश्मन यानी पूँजीवाद और पूँजीपति वर्ग को पहचानते हैं, समाजवादी कार्यक्रम को स्वीकारते हैं, समाजवाद के लक्ष्य और विकल्प को स्वीकारते हैं, तो ये एक आम क्रान्तिकारी जनान्दोलन में तब्दील हो सकते हैं।

यानी पूँजीवादी संकट एक दोहरी सम्भावना को जन्म देते हैं: पूँजीवाद से बेहतर एक न्यायपूर्ण और समानतामूलक व्यवस्था की स्थापना यानी समाजवाद की स्थापना या फिर पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा विनाश का उत्तरोत्तर बर्बरता, यानी प्रतिक्रियावाद, तानाशाही, युद्ध और तबाही, की ओर जाना। एक क्रान्तिकारी वैज्ञानिक के तौर पर इन दोनों सम्भावित नतीजों की पहचान ज़रूरी है। लेकिन हमारा क्रान्तिकारी आशावाद हमें यह भी बताता है कि प्रबल सम्भावना यह है कि ऐसी बर्बरता की मंज़िल पूर्ण हो, इससे पहले दुनिया भर की मेहनतकश जनता उठ खड़ी होगी और समाज को एक क्रान्तिकारी परिवर्तन की ओर ले जायेगी, वह पूँजीवाद को दुनिया को तबाह नहीं करने देगी।

यह है मार्क्स की युगान्तरकारी वैज्ञानिक शिक्षा, जिसे इतिहास बार-बार सही साबित करता आया है और आज भी सही साबित कर रहा है। दुनिया के इतिहास में पहले भी ऐसे दौर आये हैं जब क्रान्तियों की पराजय के बाद हार और विपर्यय (क़दम पीछे हटाने और पलटी खाने) के दीर्घकालिक लम्बे दौर चले हैं। केवल वे लोग इन दौरों के आने पर निराशावाद के शिकार हो जाते हैं, जिनके पास कोई ऐतिहासिक दृष्टि नहीं होती। पूँजीवाद को सामन्तवाद पर विजय पाने के पहले कई क्रान्तियों की हार, पराजय और विपर्यय से गुज़रना पड़ा था और इस प्रक्रिया में ही करीब

(पेज 18 पर जारी)

नोएडा और मानेसर के मज़दूर संघर्षों में कौन "बाहरी" और कौन "भीतरी"

● गायत्री भारद्वाज

जब भी कहीं मज़दूरों की कोई हड़ताल या आन्दोलन शुरू होता है, तो उसमें सक्रिय ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं और मज़दूर संगठन के राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर पुलिस प्रशासन और सरकार "बाहरी तत्व" होने की तोहमत लगाते हैं। उनके अनुसार, जो स्वयं उस शहर या औद्योगिक क्षेत्र में कारखाने में काम नहीं करता, उसे मज़दूरों के मसले पर बोलने का या उनके आन्दोलन में शिरक़त करने का कोई अधिकार नहीं है। यह हुक्मरानों का पुराना "तर्क" है। बल्कि कहना चाहिए कि कुतर्क है। नोएडा के मज़दूर आन्दोलन में सक्रिय मज़दूर कार्यकर्ताओं, श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं, छात्र कार्यकर्ताओं और उसका समर्थन करने वाले बुद्धिजीवियों मसलन सत्यम वर्मा, आदित्य आनन्द, रूपेश राय, हिमांशु ठाकुर, सृष्टि, आकृति आदि पर नोएडा पुलिस ने यही "बाहरी" होने का आरोप लगाया। उसी प्रकार मानेसर में गिरफ्तार कार्यकर्ता साथियों श्यामबीर और हरीश पर भी ये ही आरोप लगाये गये हैं। तो हमें इस आरोप का पूरा कुतर्क समझ लेना चाहिए।

"बाहरी" और "भीतरी" की बात करते समय पहला सवाल यह उठता है कि किस वस्तु के बाहर या भीतर? मज़दूर इसी समाज का हिस्सा होते हैं और इस समाज के हिस्से के तौर पर ही वे मालिकों और सरकार से अपनी जायज़ माँगों को लेकर संघर्ष करते हैं। उनके संघर्ष में इस समाज का कोई भी व्यक्ति आवाज़ उठा सकता है चाहे वह स्वयं मज़दूर हो या न हो। चाहे वह छात्र हो, बुद्धिजीवी हो, या जनवादी व नागरिक अधिकार कार्यकर्ता, उन्हें संवैधानिक तौर पर इस बात का पूरा अधिकार है कि वे जनता के किसी भी संघर्ष में हिस्सेदारी कर सकते हैं और उसका समर्थन कर सकते हैं। जब देश का संविधान इस बात की इजाज़त देश के नागरिकों को देता है तो किसी पुलिस विभाग या सरकार के पास यह शक्ति कैसे हो सकती है कि किसी भी संघर्ष में उनकी भागीदारी या उनके समर्थन को ग़ैर-क़ानूनी क़रार दे और गोदी मीडिया का इस्तेमाल कर उसके प्रति देश में दुष्प्रचार करे?

दूसरी बात यह कि अगर मालिकान-प्रबन्धन और मज़दूरों के बीच के विवाद की बात की जाय, तो पुलिस की ही परिभाषा से उसमें "भीतरी" तत्व तो केवल मज़दूर और मालिकान-प्रबन्धन हुए। फिर वहाँ पुलिस, भाजपा के नेता, अन्य पूँजीवादी चुनावी पार्टियों के नेता क्या करने जाते हैं? जब तक कोई क़ानून-व्यवस्था की स्थिति पैदा नहीं होती, तब तक सरकार को मज़दूरों और मालिकान-प्रबन्धन को अपना विवाद स्वयं निपटाने के लिए छोड़ देना चाहिए क्योंकि पुलिसवाले और भाजपा व तमाम पूँजीवादी पार्टियों के नेता भी न तो स्वयं मज़दूर हैं और न ही कारखाना मालिक या प्रबन्धन हैं। फिर मालिकों के हितों की रक्षा करने के नाम पर पुलिस और प्रशासन तथा तमाम पूँजीवादी नेता हड़तालों में दख़लन्दाज़ी क्यों करते हैं? हड़ताल करना तो मज़दूरों का संवैधानिक और क़ानूनी अधिकार है। ऐसा करके वे कोई भी क़ानून नहीं तोड़ रहे हैं, कोई भी असंवैधानिक हरक़त नहीं कर रहे हैं। तो फिर उद्योग जगत और मज़दूर जगत से बाहर की एक "बाहरी" ताक़त यानी पुलिस, प्रशासन व पूँजीवादी पार्टियों के नेता वहाँ क्या करने जाते हैं? यह तो एक श्रम विवाद है! क़ानून के ही अनुसार अगर वहाँ किसी को जाना चाहिए तो वह श्रम विभाग के अधिकारी, मालिक व प्रबन्धन के लोग हैं। लेकिन पुलिस सीधे तौर पर इन हड़तालों को कुचलने में संलग्न होती है। तब "बाहरी" का सवाल नहीं उठता? "बाहरी"- "भीतरी" का सवाल केवल मज़दूरों के प्रतिनिधियों और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं व सामाजिक कार्यकर्ताओं के मज़दूर आन्दोलन का समर्थन करने या उसमें भागीदारी करने पर उठता है?

तीसरी बात, ऐतिहासिक तौर पर भी देखें तो हर प्रकार के नेता व राजनीतिक कार्यकर्ता, चाहे वे मज़दूरों के प्रतिनिधि हों, किसानों के प्रतिनिधि हों, या फिर पूँजीपति वर्ग के प्रतिनिधि हों, हर प्रकार के संघर्ष में जाते रहे हैं, चाहे वे उनके इलाके या पेशे में हों या किसी और इलाके या पेशे में। अगर कोई ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता, छात्र कार्यकर्ता, या कोई भी सामाजिक व राजनीतिक कार्यकर्ता मज़दूर आन्दोलन के समर्थन में जाता है या मज़दूर संघर्षों में भागीदारी करता है और इसके आधार पर उसे "बाहरी" बताया जाता है तो महात्मा गाँधी चम्पारन के किसान आन्दोलन के लिए "बाहरी तत्व" थे, भगतसिंह, राजगुरू, सुखदेव, चन्द्रशेखर आज़ाद भी अपने इलाकों से बाहर जहाँ भी स्वतन्त्रता संग्राम में हिस्सेदारी कर रहे थे, वे उनके लिए "बाहरी तत्व" थे, और अंग्रेज़ सरकार उस समय इस प्रकार का प्रचार करती भी थी कि ये "बाहरी तत्व" हैं। वैसे तो नरेन्द्र मोदी भी बनारस के लिए एक "बाहरी तत्व" हैं, क्योंकि एक गुजराती का बनारस में क्या काम? योगी आदित्यनाथ उर्फ़ अजय सिंह बिष्ट भी उत्तराखण्ड से बाहर हर जगह "बाहरी तत्व" ही माने जाने चाहिए।

आप देख सकते हैं कि किस प्रकार पूँजीपति वर्ग, उसकी सरकार और उसकी पुलिस मज़दूरों को उनके संघर्ष में समाज से काट देने की साज़िश करती है। धन्नासेठों और अमीरज़ादों को तो अपनी हितों की नुमाइन्दगी करने के लिए कहीं से भी नेता और कार्यकर्ता मिल सकते हैं, चाहे वे उनके वर्ग, जाति या इलाके से हों या न हों। लेकिन जब मज़दूर अपने जायज़ हक़ों के लिए लड़ते हैं, तो समाज के बाक़ी प्रगतिशील समूहों, व्यक्तियों, दलों आदि से उनको काट दिया जाता है यह कहकर कि वे लोग "बाहरी" हैं। वास्तव में, जनता और उसके संघर्षों के लिए कोई बाहरी तत्व है तो वह पूँजीवादी सरकारें, पूँजीपति वर्ग और उनका पुलिस व प्रशासन हैं क्योंकि जनता का संघर्ष ही उनके ख़िलाफ़ है। लेकिन उनको "भीतरी" बना दिया जाता है! और मज़दूरों के संघर्ष के वास्तविक सहयात्रियों, समर्थकों और भागीदारों को "बाहरी" घोषित कर उनके विरुद्ध दुष्प्रचार किया जाता है। नोएडा में गिरफ़्तार किये गये मज़दूर व ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, छात्रों आदि को भी पुलिस यही बोलकर जनता के सामने "बाहरी" साबित करने की कोशिश कर रही है। लेकिन इस परिभाषा से ही श्रम विवाद के मामले में "भीतरी" तो कमिश्नर लक्ष्मी सिंह भी नहीं हैं और उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री योगी आदित्यनाथ भी नहीं हैं। आदित्यनाथ को भी केरल से लेकर बंगाल और मध्य प्रदेश से लेकर हिमाचल प्रदेश में चुनावी रैली नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे भी वहाँ "बाहरी" ही हैं।

ये बातें मज़दूर वर्ग को धोखा देने और उसे मूर्ख बनाने के लिए की जाती हैं। इन पर मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता को कभी ध्यान नहीं देना चाहिए और ऐसी बातों का पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। यह मज़दूर वर्ग को अकेला और निहत्था कर देने, बाक़ी जनता से उसे काट देने की साज़िश का हिस्सा है। और जब मज़दूर वर्ग जनता के बाक़ी हिस्सों से कट जाता है, तो उसका दमन करना पूँजीवादी व्यवस्था के लिए आसान हो जाता है। नोएडा और मानेसर में भी भाजपा की राज्य सरकारें, उसकी पुलिस और उसका गोदी मीडिया यही पुराना 'टेम्पलेट' इस्तेमाल कर रहा है। मज़दूरों को इस साज़िश को पहचानना चाहिए और इसे नाक़ाम करना चाहिए। न्याय के संघर्ष में कोई भी "बाहरी" नहीं होता क्योंकि न्याय की सोच ही सार्वभौमिक है और कोई स्वयं व्यक्तिगत तौर पर किसी अन्याय से प्रभावित हो या न हो, उसे उस अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने का पूरा जनवादी व संवैधानिक अधिकार होता है।

जब तक इंसानों के हाथों इंसानों का शोषण जारी रहेगा, तब तक मार्क्स के क्रान्तिकारी विचार शासक वर्गों को दु:स्वप्न देते रहेंगे

(पेज 17 से आगे)

चार शताब्दियाँ लगी थीं। सर्वहारा वर्ग और उसकी क्रान्ति के विज्ञान के पैदा हुए तो अभी मुश्किल से दो शताब्दियाँ भी नहीं बीती हैं। और इस छोटे-से दौर में ही उसने सोवियत यूनियन और चीन में कुछ दशकों तक जीवित रहे समाजवादी प्रयोगों में ही दिखला दिया कि एक पूँजीवादी व्यवस्था और दुनिया से बेहतर व्यवस्था और दुनिया सम्भव है। निश्चित तौर पर, कुछ गम्भीर ग़लतियों के कारण ये समाजवादी प्रयोग अन्ततः गिर गये, लेकिन पूँजीवादी क्रान्तियों के पहले प्रयोग भी असफल ही हुए थे। साथ ही, यह भी याद रखना चाहिए कि ये एक नये उदीयमान क्रान्तिकारी वर्ग यानी सर्वहारा वर्ग के पहले प्रयोग थे। उनके पास सीखने के लिए असफलताओं का कोई लम्बा इतिहास या मिसाल नहीं थी। आज सर्वहारा वर्ग अपने अतीत के प्रयोगों से सीख सकता है और उसे सीखना ही होगा। उसकी हिरावल शक्तियों को विश्व पूँजीवादी व्यवस्था में आये तमाम बदलावों को भी समझना होगा, चाहे वे आर्थिक हों, राजनीतिक हों या सामाजिक, क्योंकि दुनिया आज 1917 (रूसी क्रान्ति) या 1949 (चीनी क्रान्ति) के ही दौर में नहीं खड़ी है, बल्कि उससे बहुत आगे आ चुकी है।

अपने अतीत के प्रयोगों का समाहार करके और पिछले क़रीब आठ दशकों में पूँजीवादी व्यवस्था के काम करने के तौर-तरीक़ों में आये बदलावों को समझकर ही सर्वहारा वर्ग समाजवाद के नये और टिकाऊ संस्करण रच सकता है। उसे मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद के नाम पर जो "वामपंथी" दुस्साहसवाद और आतंकवाद की लाइन पेश की जा रही है, उसे सिरे से नकारना होगा क्योंकि उसका मार्क्सवाद के विज्ञान से कोई लेना-देना ही नहीं है। साथ ही उसे संशोधनवाद और सामाजिक-जनवाद को भी नकारना होगा, जो जनता के संघर्षों को केवल सुधारवाद और अर्थवाद के दलदल में ही ले जा सकता है। सर्वहारा वर्ग और उसकी अगुवा ताक़तों को क्रान्तिकारी जनदिशा की लाइन को अपनाना होगा और व्यापक जनता को उसकी आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक माँगों पर जागृत, गोलबन्द और संगठित करना होगा।

आज पूँजीवादी विश्व एक दीर्घकालिक मन्दी के भँवर में फँसा हुआ है। यह संकटग्रस्त, मरणासन्न और परजीवी व्यवस्था आज दुनिया की जनता को तबाही, बरबादी, ग़रीबी, बदहाली, भुखमरी, कुपोषण, युद्ध, पर्यावरणीय तबाही और सांस्कृतिक घटाटोप की पतनशीलता के अलावा कुछ नहीं दे सकती है। यह सच्चाई नंगी आँखों से देखी जा सकती है। जनता के विभिन्न हिस्से अपनी-अपनी विशिष्ट माँगों को लेकर इसके विरुद्ध आवाज़ भी उठा रहे हैं। लेकिन इन बिखरे हुए संघर्षों के बूते कोई व्यवस्थागत परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इन बिखरे हुए संघर्षों को एक लड़ी में पिरोने के लिए आज एक क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी की आवश्यकता है, जो जनता के तमाम वर्गों और हिस्सों को क्रान्तिकारी जनदिशा के आधार पर एक व्यावहारिक और यथार्थवादी समाजवादी कार्यक्रम पर एकजुट, जागृत, गोलबन्द और संगठित करे।

आज दुनिया भर में क्रान्तिकारी आन्दोलनों की सबसे बड़ी समस्या और संकट है ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी का अभाव। हमें एक ऐसी क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी के निर्माण और गठन की ओर आगे बढ़ना होगा। **मार्क्स के 208वें जन्मदिवस पर सर्वहारा वर्ग के इस महान शिक्षक को सबसे बड़ी आदरांजलि और इंक़लाबी सलाम यही होगा कि हम उनके द्वारा प्रस्तुत वैज्ञानिक दर्शन और क्रान्तिकारी विज्ञान को समझें और आत्मसात करें, क्रान्तियों के इतिहास का अध्ययन करें, अपने जुझारू पूँजीवाद-विरोधी जनान्दोलनों को खड़ा करें, जनता के समस्त वर्गों व हिस्सों के साथ एकजुट हों जैसे कि आम मध्यवर्ग, ग़रीब व निम्न-मँझोला किसान वर्ग व अर्द्धसर्वहारा वर्ग और उन सभी के वर्ग हितों के आधार पर उन्हें एक नया समाजवादी कार्यक्रम दें।** यही मज़दूर वर्ग के उन्नत अगुवा तत्वों का कार्यभार है। अगर हम इसे पूरा नहीं करते तो हमसे यह ग़लती हो जायेगी कि हम समाजवाद की घड़ी को बीत जाने देंगे और फिर फ़ासीवाद और प्रतिक्रिया का दण्ड झेलने को अभिशप्त होंगे।

नोएडा के मज़दूर आन्दोलन और गिरफ्तार सामाजिक कार्यकर्ताओं व बुद्धिजीवियों के बारे में उत्तर प्रदेश पुलिस की विचित्र 'सत्य कथाएँ' और वास्तविक सच्चाई

(पेज 10 से आगे)

ज़रिये कोर्ट में इस बात का आवेदन जमा कर चुके हैं कि पुलिस को उन्होंने कोई इक़बालिया बयान नहीं दिया है और पुलिस द्वारा रिमाण्ड ऑर्डर में किये गये दावे सिरे से बेबुनियाद और झूठे हैं।

वैसे तो कोई व्यक्ति उपरोक्त रिमाण्ड ऑर्डर में पुलिस की भाषा पढ़कर ही अन्दाज़ा लगा सकता है कि जल्दी-जल्दी में एक कहानी रच दी गयी है। पुलिस ने इस बात का कोई प्रमाण पेश नहीं किया है कि आदित्य आनन्द 13 अप्रैल को नोएडा में था। न तो कोई कॉल डिटेल रिकॉर्ड, न मोबाइल लोकेशन और न ही कोई वीडियो। इसके अलावा, पुलिस का भड़काऊ भाषण देने का आरोप भी बेबुनियाद है क्योंकि आदित्य आनन्द द्वारा मज़दूरों के बीच दिये गये भाषण का वीडियो ऑनलाइन सार्वजनिक तौर पर मौजूद है। इस वीडियो में आदित्य आनन्द और रूपेश राय मज़दूरों को शपथ दिलवा रहे हैं कि वे अपनी हड़ताल को शान्तिपूर्ण तरीके से चलायेंगे और किसी भी प्रकार की हिंसा न तो करेंगे और न ही करने देंगे। आदित्य आनन्द जिस एक व्हाट्सऐप ग्रुप के सदस्य थे, उसमें भी उन्होंने वीडियो डालकर मज़दूरों से अपील की है कि वे पुलिस के उकसावे में न आएँ जो बार-बार उन्हें हिंसा के लिए भड़का रही है, वे अपनी हड़ताल को पूर्णत: शान्तिपूर्ण तरीक़े से चलाएँ। यह वीडियो भी कुछ खोजी रिपोर्टरों द्वारा ऑनलाइन डाला जा चुका है। राष्ट्रीय दैनिक *जनसत्ता*, *एक्सप्रेस ग्रुप*, *वायर* आदि अख़बारों व न्यूज़ पोर्टलों ने भी इस बाबत रिपोर्टिंग की है और दिखलाया है कि आदित्य आनन्द और रूपेश राय लगातार हड़ताल को शान्तिपूर्ण बनाये रखने के लिए मज़दूरों का आह्वान कर रहे थे और उन्हें आगाह कर रहे थे कि पुलिस जानबूझकर हिंसा फैलाना चाहती है, ताकि बाद में आन्दोलन को ग़ैर-क़ानूनी दिखाकर उसके दमन को सही ठहरा सके। यही वजह है कि कोई भी हिंसा रूपेश व उनके साथियों के गिरफ्तार होने के बाद ही हुई।

अब आइये देखते हैं कि एक प्राथमिकी (एफ.आई.आर. 164/2026) के तहत रूपेश राय को मिली अन्तरिम ज़मानत के दस्तावेज़ में पुलिस की सत्य कथाएँ किस प्रकार एक नये शिखर पर पहुँचती हैं। इसमें लिखा है : ***"एफ.आई.आर. के अवलोकन से विदित होता है कि अभियुक्त (रूपेश राय) पर दिनांक 13-04-2026 को समय लगभग सुबह 06:15 से 2 बजे के मध्य वादी कम्पनी के परिसर में काफ़ी संख्या में वादी कम्पनी के वर्करों द्वारा एकत्रित होकर कम्पनी में जबरन गेट तोड़कर प्रवेश किया एवं शीशे तथा परिसर को क्षतिग्रस्त करने का आरोप है।"***

तो पुलिस का आरोप है कि रूपेश राय 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के बाहर मौजूद थे, मज़दूरों को भड़का रहे थे, हिंसा करवा रहे थे और कम्पनी में तोड़-फोड़ करवा रहे थे। कहानी सुन्दर है लेकिन इसमें एक दिक़्क़त है। रूपेश राय तो 11 अप्रैल से ही पुलिस की हिरासत और फिर न्यायिक हिरासत में थे और 13 अप्रैल को वह नोएडा के कासना के लुक्सर जेल में बन्द थे! अब एक बार फिर से या तो रूपेश राय प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रोडिंगर की परिकल्पनात्मक बिल्ली के समान एक साथ दो स्थानों पर हो सकते हैं, या फिर पुलिस शपथ के मातहत होने के बावजूद कोर्ट में झूठ बोल रही है। अगर ऐसा है, तो क्या पुलिस पर सख़्त से सख़्त कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए? लेकिन सूरजपुर कोर्ट ने ऐसा कुछ नहीं किया, बस इस विशिष्ट प्राथमिकी में रूपेश राय को अन्तरिम ज़मानत दे दी!

जब अदालत ने पुलिस से पूछा कि 13 अप्रैल को रूपेश राय भला मदरसन कम्पनी के बाहर कैसे मौजूद हो सकते हैं, तो पुलिस ने फ़ौरन अपनी बात बदल दी और कहा कि रूपेश राय ने हिंसा का षड्यन्त्र किया था। लेकिन तब भी यह सवाल पैदा होता है कि 11 अप्रैल से ही जेल में मौजूद रूपेश राय 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के बाहर होने वाली हिंसा का षड्यन्त्र कैसे रच सकते हैं, जबकि न तो उनके पास कोई फ़ोन था और न ही कोई इलेक्ट्रॉनिक यन्त्र! ज़ाहिर है, यह पुलिसिया झूठ भी उतना ही नंगा था जितना कि यह कि रूपेश राय 13 अप्रैल की सुबह मदरसन कम्पनी के बाहर मौजूद थे। अब आप स्वयं सोचें कि पुलिस इन सामाजिक कार्यकर्ताओं पर जो आरोप लगा रही है, वे सच्चे हैं या झूठे। सच्चे होते तो पुलिस को बार-बार अपनी बात बदलने की कोई ज़रूरत नहीं होती। यही वजह है कि जिला न्यायालय के न्यायाधीश को भी एक एफ़. आई.आर. में रूपेश राय की अन्तरिम ज़मानत स्वीकार करते हुए यह कहना पड़ा : ***"न्यायालय द्वारा विवेचक से प्रश्न किये जाने पर ऐसा कोई सन्तोषजनक दस्तावेज़ या साक्ष्य प्रथम दृष्टया नहीं दिखाया गया जो यह दर्शाता हो कि अभियुक्त द्वारा कम्पनी में तोड़-फोड़ के सम्बन्ध में कोई षड्यन्त्र रचा गया हो।"***

अब जब तमाम मीडिया रिपोर्टों में उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा नोएडा मज़दूर आन्दोलन के दौरान हिंसा भड़काने के सबूत सामने आने लगे हैं, तो अचानक उत्तर प्रदेश प्रशासन ने नोएडा हिंसा की जाँच से भाजपा विधायक राजेश्वर राय की पत्नी और नोएडा कमिश्नर लक्ष्मी सिंह को पीछे कर दिया है, जो अब तक रोज़ मीडिया के सामने आकर "पाकिस्तान कनेक्शन", "नक्सली साज़िश", इत्यादि जैसे बेतुके बयान दे रही थीं और गोदी मीडिया उसे नमक-मिर्च लगाकर फैला रहा था। लोगों के दिमाग़ में यह सवाल आने लगा कि साज़िश तो ज़रूर हुई है, लेकिन लगता है कि यह साज़िश मज़दूर आन्दोलन और उसमें सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ताओं और उसके समर्थक बुद्धिजीवियों को बदनाम करने के लिए स्वयं उत्तर प्रदेश पुलिस और उत्तर प्रदेश सरकार ने की है। अब चेहरा बचाने के लिए एक मजिस्ट्रेट जाँच बिठा दी गयी है, जो आम तौर पर यह जाँच करेगी कि नोएडा में मज़दूरों का प्रदर्शन स्वत:स्फूर्त था या उसके पीछे कोई साज़िश थी! लेकिन उसकी निष्पक्षता भी सवालों के दायरे में है क्योंकि जाँच करने का काम स्वयं एक पुलिस अधिकारी ही करेंगे। ऐसे में, उत्तर प्रदेश की सन्देहास्पद भूमिका की क्या कोई निष्पक्ष जाँच हो सकती है? पुलिस भला अपनी जाँच स्वयं कैसे कर सकती है?

इसकी निष्पक्ष जाँच होने की कुछ उम्मीद एक ही सूरत में है: सर्वोच्च न्यायालय की देखरेख में एक स्पेशल इन्वेस्टिगेशन टीम या फिर कोई उच्च स्तरीय न्यायिक जाँच कमीशन इसकी जाँच करे। सारी पुलिसिया जाँचों का क्या होता है, इसका इतिहास देश की जनता को पता है। नतीजतन, मजिस्ट्रेट जाँच चेहरा बचाने की क़वायद ज्यादा प्रतीत होती है। दूसरी बात यह है कि नोएडा में ही नहीं, बल्कि देश के दर्जनों शहरों व औद्योगिक केन्द्रों में मज़दूर भयंकर शोषण, बेहद कम मज़दूरी, और ख़राब होते ज़िन्दगी और काम के हालात के विरुद्ध सड़कों पर उतर रहे हैं। क्या ये सभी आन्दोलन किसी साज़िश का हिस्सा हैं? ऐसी बात कोई अज्ञानी व्यक्ति ही कर सकता है या फिर कोई ऐसा व्यक्ति जो मौजूदा शोषण के पक्ष में खड़ा हो और शोषण करने वाले मालिक वर्ग और उसकी सरकारों को बचाना चाहता है।

उत्तर प्रदेश में यह सारा पुलिसिया गोरखधंधा खुलेआम हो रहा है, जिसमें, अब तक सामने आये साक्ष्यों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि उत्तर प्रदेश पुलिस को मालिकों व प्रबन्धन की शह पर कथित तौर पर हड़ताल को तोड़ने की ज़िम्मेदारी उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दी जाती है; लेकिन जब तक हड़ताल शान्तिपूर्ण रहती तब तक उसे तोड़ना मुश्किल था; इसलिए उसके दौरान हिंसा होना अनिवार्य था; लेकिन आदित्य आनन्द, रूपेश राय, हिमांशु ठाकुर, सृष्टि, आकृति व मनीषा जैसे श्रम अधिकार कार्यकर्ता तमाम उकसावों और भड़कावों के बावजूद आन्दोलन को हिंसक नहीं होने दे रहे थे; नतीजतन, ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस और कम्पनियों के मालिकान-प्रबन्धन के रास्ते का सबसे बड़ा रोड़ा वे ही थे; नतीजतन, बिल्कुल ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से उप्र पुलिस के सादी वर्दी में आये लोगों ने, बिना किसी महिला पुलिसकर्मी की मौजूदगी के, सूरज डूबने के बाद 11 अप्रैल शाम सात बजे रूपेश व तीन स्त्री सामाजिक कार्यकर्ताओं सृष्टि, आकृति और मनीषा को नोएडा के बोटैनिकल गार्डन मेट्रो स्टेशन से अगवा कर लिया और अगले दिन तक उनके स्थान के बारे में कोई सूचना गिरफ्तार लोगों के परिजनों, मित्रों या वक़ीलों को देने से इंकार कर दिया; उसके बाद भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 48 का खुलेआम उल्लंघन करते हुए इन गिरफ्तार सामाजिक कार्यकर्ताओं को जेल भेज दिया गया; इसके साथ, उप्र पुलिस के अधिकारी आदित्य आनन्द के बारे में गोदी मीडिया के ज़रिये आपराधिक अफ़वाहें फैलाकर उनके ख़िलाफ़ एक मॉब लिंचिंग जैसा माहौल बनाते हैं, उनपर "पाकिस्तानी लिंक" आदि का हास्यास्पद आरोप लगाते हैं ताकि उन्हें मीडिया ट्रायल द्वारा किसी जाँच या मुक़दमे के पहले ही अपराधी बना दिया जाय।

इस प्रकार, नोएडा के मज़दूर आन्दोलन व हड़ताल को शान्तिपूर्ण व व्यवस्थित और संगठित बनाये रखने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं को पहले जेलों में डाला जाता है और उसके बाद नोएडा में 13 अप्रैल को मदरसन कम्पनी के सामने हिंसा भड़काना सम्भव हो पाता है। इसी बीच इस बात के प्रमाण भी सामने आ गये कि मज़दूरों के व्हाट्सऐप ग्रुपों में पुलिस के घुसपैठिये, जिनमें एक सबइंस्पेक्टर बीना और एक स्वयं को पुलिस अधिकारी का ड्राइवर बताने वाला अनिल भी शामिल थे, मज़दूरों को हिंसा के लिए उकसाने वाले सन्देश, स्क्रीनशॉट व ऑडियो शेयर कर रहे थे। यानी, उत्तर प्रदेश पुलिस के लोग ख़ुद मज़दूरों के व्हाट्सऐप ग्रुपों में हिंसा भड़काने की कार्रवाइयों में संलग्न थे। ये सबूत ऑनलाइन सार्वजनिक तौर पर मौजूद हैं और राष्ट्रीय दैनिक 'जनसत्ता' और एक्सप्रेस ग्रुप के यूट्यूब चैनल और अन्य कई समाचार मीडिया पर ये सबूत जनता के सामने आ चुके हैं।

अब आप बाकी सिरों को ख़ुद जोड़ लें और आप समझ जाएँगे कि उत्तर प्रदेश पुलिस को अदालत में पेश दस्तावेज़ों में नोएडा मज़दूर आन्दोलन के तहत गिरफ्तार किये गये सामाजिक कार्यकर्ताओं व बुद्धिजीवियों के बारे में कहानियाँ क्यों बनानी पड़ रही हैं। अब तक सार्वजनिक हुए साक्ष्यों और रपटों के आधार पर यह प्रतीत होता है कि उसे हिंसा के पूरे प्रकरण में अपनी भूमिका को छिपाने के लिए ऐसी "सत्य कथाएँ" रचनी पड़ रही हैं और शायद यह छिपाने के लिए भी कि हिंसा करवाई ही क्यों गयी।

वैसे भी पूरी दुनिया में 1886 में मई दिवस के आन्दोलन के समय से ही यह पुलिसिया दमन का पुराना 'टूलकिट' और 'टेम्पलेट' रहा है : मज़दूर आन्दोलनों व हड़तालों को तोड़ने के लिए पहले ख़ुद हिंसा भड़काओ और फिर मज़दूर आन्दोलन का दमन कर उन श्रम अधिकार कार्यकर्ताओं को ही हिंसा का झूठा आरोप लगाकर जेलों में डाल दो, जो हिंसा करवाने की साज़िशों को नाक़ाम कर रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इस बार भी इसी 'टूलकिट' का इस्तेमाल किया गया है। इसलिए इस पूरे मसले की सच्चाई तभी सामने आ सकती है जब एक उच्च स्तरीय न्यायिक समिति द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की देखरेख में निष्पक्ष जाँच हो।

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने के लिए मुहताज हैं। दुनिया भर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढंकने-भर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति जरा-जरा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं। यह भयानक असमानता और जबरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिए जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

- भगतसिंह, बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2023-2026
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

उत्तर प्रदेश की भयाक्रान्त फ़ासीवादी योगी सरकार ने मई दिवस पर आतंक का माहौल बनाने के लिए नोएडा में लगायी धारा 163 की पाबन्दियाँ

● विशाल

ज़रा सोचिये! कोई सरकार मज़दूरों को मई दिवस मनाने से कैसे रोक सकती है? वह भी खुलेआम! योगी सरकार ने उत्तर प्रदेश में बाक़ायदा ऐलान किया कि मई दिवस पर मज़दूरों को कहीं एकत्र नहीं होने दिया जायेगा, इसके लिए पूरे गौतमबुद्ध नगर ज़िला में धारा 163 लगा दी गयी, जो पहले धारा 144 के नाम से जानी जाती थी। इसके तहत कहीं भी 5 से ज्यादा लोगों का एकत्र होना ग़ैर-क़ानूनी माना जाता है। यानी, मज़दूर मई दिवस के अपने अन्तरराष्ट्रीय त्योहार को न मना सकें, इसका पूरा इन्तज़ाम योगी सरकार ने किया। इस पर न तो देश की किसी अन्य पूँजीवादी पार्टी ने कुछ कहा, न किसी न्यायालय ने इस बात का संज्ञान लिया और न ही केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों ने इसका कोई प्रभावी विरोध किया। देखा जाय तो ऐसे प्रतिबन्ध की क्या संवैधानिकता है? क्या मज़दूरों को मई दिवस मनाने का अधिकार नहीं है? क्या इसमें कुछ भी ग़ैर-क़ानूनी है? वैसे तो भीख-समान वेतन बढ़ोत्तरी कर योगी सरकार यह दावा कर रही थी कि अब समस्त मज़दूर उसके साथ हैं! तो फिर उसे मई दिवस पर मज़दूरों से इतना डर क्यों था?

मई दिवस 1886 में शिकागो में आठ घण्टे के कार्यदिवस के लिए किये गये आन्दोलन और उसके शहीदों को याद करने के लिए पूरी दुनिया में मज़दूरों और मेहनतकशों द्वारा मनाया जाता है। कई देशों में यह छुट्टी का दिन होता है। आज जब भारत और दुनिया के अन्य कई देशों में विशेष तौर पर अनौपचारिक व असंगठित मज़दूरों से आठ घण्टे के कार्यदिवस का अधिकार प्रभावत: छीन लिया गया है, जब महँगाई दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ोत्तरी कर रही है जबकि मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी घटती जा रही है, जब ओवरटाइम करना वास्तव में मज़दूर के लिए स्वेच्छा का मसला नहीं रह गया है बल्कि मजबूरी बन गया है, तब विशेष तौर पर मई दिवस की विरासत और स्मृति को धूल और राख की चादर के नीचे दबा देना शासक वर्गों के लिए ज़रूरी हो गया है। आज जब मज़दूर वर्षों पीठ झुकाकर चुप्पी के साथ ग़ुलामी करने के बाद अपना धैर्य खो रहा है और अपनी जायज़ क़ानूनी माँगों के लिए देश भर में जगह-जगह सड़कों पर उतर रहा है, हड़तालें कर रहा है, तो यह लाज़िम है कि मई दिवस का ख़ौफ़ हुक़्मरानों के दिलो-दिमाग़ को सता रहा है।

हमारा देश और पूरी दुनिया में समस्त पूँजीवादी देश पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की अन्तहीन हवस के कारण ही पैदा होने वाली मन्दी की चपेट में हैं। वास्तव में, वे लम्बे समय से इस आर्थिक संकट के भँवर में फँसे हुए हैं। हम मज़दूरों-मेहनतकशों को याद रखना चाहिए कि यह आर्थिक संकट खुद पूँजीपतियों की आपसी गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा, मुनाफ़े की अन्धी हवस और पूँजीवादी उत्पादन की अराजकता और योजनाविहीनता के कारण ही पैदा होती है, यह कोई बाढ़ या भूकम्प जैसी प्राकृतिक आपदा नहीं है, जिससे बचने का कोई रास्ता ही नहीं होता! हाँ, पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के दायरे के भीतर इससे नहीं बचा जा सकता। लेकिन मन्दी और आर्थिक संकट की क़ीमत भी मालिकों की जमात मज़दूरों और मेहनतकशों से ही वसूलती है। मन्दी का अर्थ होता है छँटनी, तालाबन्दी, बढ़ती बेरोज़गारी, घटती वास्तविक मज़दूरी, मज़दूरों का गिरता जीवन-स्तर और उनकी ज़िन्दगी में अनगिनत दिक्क़तें और किल्लतें। हमारा देश और समूची पूँजीवादी दुनिया में ये चीज़ें लगातार घटित हो रही थीं और मज़दूरों-मेहनतकशों का जीवन-स्तर, औसत आय और कार्य-स्थितियों के हालात लगातार ख़राब हो रहे थे।

ऊपर से साम्राज्यवादी अमेरिका और ज़ायनवादी इज़रायली सेटलर राज्य द्वारा ईरान पर थोपे गये युद्ध के कारण गैस और तेल की क़ीमतों का जो संकट पैदा हुआ है, और इस पूरे मसले पर भारत की फ़ासीवादी मोदी सरकार ने जो मूर्खतापूर्ण विदेश नीति अपनायी है, उनके कारण भी हमारे देश में रसोई गैस की किल्लत, बढ़ती क़ीमतों और कालाबाज़ारी से देश की आम मेहनतकश जनता के लिए दो वक़्त की रोटी का जुगाड़ करना भी मुश्किल हो गया है। तेल की क़ीमतों में अब वृद्धि की घोषणा मोदी सरकार कर चुकी है और आगे भी धड़ाधड़ करेगी, जिसे केवल पाँच राज्यों के विधानसभा चुनावों के कारण इसने रोक रखा था। इसका नतीजा यह होगा कि महँगाई में और भी भयंकर बढ़ोत्तरी होगी। यानी, मज़दूरों और मेहनतकशों के जीवन की हालात और भी बदतर होंगे।

ये बदतर होते जीवन के हालात ही थे जिनसे तंग आकर हमारे देश के मज़दूर बरौनी से पानीपत तक, सूरत से मानेसर तक और भरूच से नोएडा तक सड़कों पर उतरने और हड़ताल करने को मजबूर हुए। बरसों से कमरतोड़ मेहनत, 12-14 घण्टे काम, रोज़-रोज़ प्रबन्धन व मालिकान की ओर से गाली-गलौच और ज़िल्लत, डबल रेट से ओवरटाइम के भुगतान से इंकार, सातों दिन काम के लिए मजबूर किये जाने, और अन्य श्रम अधिकारों से वंचित किये जाने के बाद मज़दूरों की सहनशक्ति जवाब दे चुकी थी। 4-5 हज़ार रुपये कमरे का किराया, 4-4 हज़ार रुपये का रसोई गैस सिलेण्डर और खाने-पीने की बेतहाशा महँगी हो रही वस्तुओं के कारण मज़दूरों के परिवारों के लिए एक इंसानी जीवन जी पाना भी मुश्किल हो गया था। इसी का यह नतीजा था कि देश के विविध हिस्सों में मज़दूरों के स्वत:स्फूर्त संघर्ष और हड़तालें फूट पड़ीं। फ़ासिस्ट भाजपाइयों की सभी राज्य सरकारें किसी साज़िश, पाकिस्तानी षड्यन्त्र, नक्सली चाल वगैरह की कहानियाँ गढ़कर जनता को गुमराह करने की कोशिश कर रही हैं। लेकिन इसमें उनको तनिक भी सफलता हासिल नहीं हो पायी। क्योंकि आम जनता भी जानती है कि मज़दूरों-मेहनतकशों के जीवन के हालात क्या हैं। वह भी इन तकलीफ़ों को रोज़ झेल रही है। वह भी फ़ालतू के धार्मिक व साम्प्रदायिक झगड़ों से बुरी तरह से ऊब चुकी है और अपने जीवन के बुनियादी सवालों, यानी रोटी, कपड़ा और मकान और एक इज्जत भरी इंसानी ज़िन्दगी के सवाल का हल चाहती है। भाजपा समूची सरकारी मशीनरी, चुनाव आयोग, ईडी, केन्द्रीय बलों, पुलिस व नौकरशाही पर आन्तरिक कब्ज़े के बूते चाहे जितने भी चुनाव जीत ले, इससे सच्चाई पर कोई फ़र्क नहीं पड़ने वाला है और सच्चाई यह है कि जनता अपने गिरते जीवन स्तर, औसत आय, महँगाई, बेरोज़गारी, महँगे होते दवा-इलाज व शिक्षा से आजिज़ आती जा रही है। उसके गुस्से का ज्वालामुखी सतह के नीचे सुलग रहा है। यही वह बात है जो शासक वर्गों को सता और डरा रही है।

जब नोएडा में मज़दूरों का संघर्ष शुरू हुआ तब योगी सरकार के "ख़ुशहाल उत्तर प्रदेश", "सुखी कार्मिक", "विकास के पथ पर अग्रसर प्रदेश", वगैरह के सारे दावे ध्वस्त हो गये। ऊपर से अभी कुछ समय पहले ही जिन पूँजीपतियों से योगी आदित्यनाथ ने वायदा किया था कि उत्तर प्रदेश में उन्हें मज़दूरों की हड़ताल व आन्दोलन से पूर्ण मुक्ति मिलेगी, वहाँ वे 10-12 हज़ार में मज़दूरों को बेतरह खटा सकते हैं, और मज़दूरों को ज़रा भी चूँ-चपड़ नहीं करने दी जायेगी, आदि, उन पूँजीपतियों ने भी योगी सरकार पर त्यौरियाँ चढ़ा लीं।

यही तो वजह है कि योगी सरकार ने ख़ुद उत्तर प्रदेश पुलिस का निर्देशन किया कि वह नोएडा में मज़दूर आन्दोलन को किसी भी तरीक़े से कुचले, वहाँ एक आतंक का राज्य क़ायम करे ताकि मज़दूर हमेशा के लिए शान्त हो जाएँ। सारे हुक़्मरानों को हमेशा यही मुग़ालता होता है कि वह दमन के बूते जनता को हमेशा के लिए ग़ुलामी के लिए तैयार कर सकता है। योगी आदित्यनाथ कोई अलग नहीं है।

एक भद्दे मज़ाक के तौर पर एक मामूली वेतन बढ़ोत्तरी की घोषणा योगी आदित्यनाथ सरकार ने की, मज़दूरों के लिए कुछ हेल्पलाइन वगैरह चालू करने की नौटंकी भी की गयी। साथ में, पुलिस की डी.सी.पी. (इण्डस्ट्री) नामक एक नयी पोस्ट बनायी गयी है जोकि किसी भी तरह से संविधान-सम्मत नहीं है क्योंकि श्रम विवादों में यह सीधे पुलिस को हस्तक्षेप करने का मौक़ा देती है। इन क़दमों के आधार पर योगी सरकार मज़दूरों को शान्त करना चाहती है कि वे अपनी ज़िन्दगी के भयंकर हालात को स्वीकार कर लें और उन पर सन्तोष कर लें। लेकिन इसके बावजूद सरकार को यह डर है कि मज़दूर कहीं फिर से हड़ताल पर न चले जाएँ और उसे डर था कि मई दिवस और उसके समारोह व आयोजन इसका कारण बन सकते हैं। नतीजतन, योगी सरकार ने 30 अप्रैल से 8 मई तक पूरे ज़िले में ही धारा 163 लागू कर दी जिससे कि मई दिवस का कोई कार्यक्रम मज़दूर कर ही न सकें। इसके बावजूद, नोएडा की लुक्सर जेल में नोएडा मज़दूर आन्दोलन के बन्द मज़दूर कार्यकर्ताओं व सामाजिक कार्यकर्ताओं ने वहाँ बन्द अन्य मज़दूरों व मेहनतकशों के साथ मई दिवस मनाया, क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये और मई दिवस के शहीदों और उसकी विरासत को याद किया।

वैसे इस प्रकार का सरकारी आदेश ही किस क़ानून या संविधान की किस धारा के तहत जायज़ ठहराया जा सकता है कि मज़दूर मई दिवस के कार्यक्रम व आयोजन न करें? संविधान देश के सभी नागरिकों को यह अधिकार देता है कि वे शान्तिपूर्ण तरीक़े से एकत्र हों, अपने संगठन बनाएँ और अपने विचारों को अभिव्यक्त करें और मज़दूर भी इस देश के बराबर हक़ रखने वाले नागरिक हैं। क़ानून व संविधान की किताबों में तो यही लिखा है। लेकिन एक पूँजीवादी समाज में वास्तव में जैसे-जैसे हम सामाजिक वर्गों के पदानुक्रम में नीचे की ओर जाते हैं, वैसे-वैसे ग़रीब मेहनतकश आबादी यानी निम्न-मध्यवर्ग, अर्द्धसर्वहारा आबादी, ग़रीब किसान आबादी और मज़दूर-मेहनतकश आबादी के लिए ये औपचारिक अधिकार महज़ किताबी और काग़ज़ी बनकर रह जाते हैं और पूँजीपति वर्ग की सरकारें नग्न रूप में उन पर अपनी तानाशाही चलाती हैं। गौतमबुद्धनगर में मई दिवस पर लगी रोक वास्तव में इसी बात को सच साबित करती है।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, लखनऊ-226016 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फैजाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक- अभिनव ● सम्पादकीय पता : 263, हरिभजन नगर, शहीद भगतसिंह वार्ड, तकरोही, इन्दिरानगर, लखनऊ-226016